वैरागी

वैरागी

(उपन्यास)

लेखक :

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय



प्रभात प्रकाशन

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन,
मथुरा।



१९५८ ई०





अनुवादक :
प्रकाशचन्द्र श्रीवास्तव



मूल्य :
दो रुपया



मुद्रक :
जवाहर प्रिंटिंग प्रेस,
मथुरा।

दो शब्द

वृन्दावन और कुसुम पति-पत्नी थे। बचपन में ही उनकी शादी हो गई थी। किन्तु, समाज के भय से उनके माँ-बाप ने बचपन में ही उन्हें अलग भी कर दिया था। जब बड़े हुए तो दोनों ने ही एक दूसरे के लिये प्यार का अनुभव किया। किन्तु, उनके स्वाभिमान ने उन्हें अलग रक्खा। एक दूसरे के बारे में उन्हें काफी गलतफ़हमी रही।

चरण वृन्दावन का लड़का था। कुसुम और वृन्दावन दोनों ही उसे चाहते थे। किन्तु हैजे के कारण उसकी मृत्यु हो गई और उसका सदमा माँ-बाप पर बड़ा गहरा पड़ा। उनका प्यार एक से अनेक में बदल गया। समस्त मानवता के लिये प्रेम उमड़ पड़ा। अपनी सारी जायदाद दूसरों की भलाई के लिये देकर वृन्दावन एक भीख माँगने वाली झोली लेकर निकल पड़े। कुसुम ने उनका साथ दिया।

इन्हीं वृन्दावन के नाम पर पुस्तक का नाम शरद् बाबू ने "पंडित मशाय" रक्खा है। इसके हिन्दी अनुवाद का नाम है 'वैरागी'।

समाज के पण्डों और अपने को शास्त्रज्ञ कहने वाले पण्डितों की लेखक ने छीछालेदर कर डाली है। वृन्दावन के माध्यम से उन्होंने उपेक्षित गांवों की ओर ध्यान देने की अपील की है।

—अनुवादक

५

कुँज वैष्णव की छोटी वहिन कुसुम के बचपन का इतिहास इतना भद्दा है कि उसकी याद आते ही वह दुख और लज्जा के कारण जमीन में गड़-सी जाती है। दो ही साल की उम्र में उसके पिता मर गये थे और माता ने भीख माँग-माँग कर भाई-बहिन को पाला पोसा था। और जब वह पाँच साल की हुई तो लड़की को सुन्दर देखकर बाड़ल ग्राम के निवासी धनी गृहस्थ गौरदास ने अपने बेटे वृन्दावन के साथ उसका विवाह कर दिया। किन्तु विवाह के कुछ ही दिनों बाद कुसुम की विधवा माता की बहुत बदनामी फैली, इसलिये कुसुम का परित्याग कर गौरदास ने अपने बेटे की दूसरी शादी कर दी।

कुसुम की माँ दुखिया और गरीब थी परन्तु थी अभिमानिनी। गुस्से में आकर वह भी अपनी बेटी को दूसरी जगह ले गई और उसी महीने में एक असली वैरागी के साथ उसकी कण्ठी की बदल-क्रिया सम्पन्न कर दी। किन्तु छः महीने के भीतर ही वे असली वैरागीराम स्वर्ग सिधार गये। परन्तु कुसुम की माँ के अलावा और कोई नहीं जानता था कि वह कौन थे, कहाँ के थे। कुँज भी नहीं जानता था। उसकी माँ किसी को अपने साथ नहीं ले गई थी। और सचमुच ही उस वैरागी के साथ कुसुम की कण्ठी बदली गयी थी, या यह केवल एक अफवाह ही थी, यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह सब कुसुम की सात साल की उम्र में ही हो गया।

तभी से वह विधवा है। थोड़े में यही उसके वचपन का इतिहास है। अब वह सोलह साल की युवती है। सौन्दर्य उसके अङ्ग-अङ्ग से फटा पड़ता है। गुणवती भी है और काम-काज करने में भी पटु है। लिखना-पढ़ना भी जानती है। किसी बहुत वड़े आदमी के घर के लिये भी वह शायद अनुपयुक्त नहीं लगती।

इधर वृन्दावन के पिता मर गये और स्त्री भी मर गई। उनकी उम्र भी पच्चीस-छव्वीस साल से अधिक नहीं है। अब वे कुसुम को फिर से अपनाना चाहते थे। पचास रुपये नकद, पाँच जोड़े धोती और डुपट्टे और पाँच भर सोने और सौ-भर चाँदी के गहने कुसुम को देने के लिये वे तैय्यार हैं। गरीव कुँजनाथ लालच में पड़ गया है। वह चाहता है कि कुसुम राजी हो जाय पर वह कुछ सुनती ही नहीं। इन दोनों के माँ-वाप नहीं हैं। दोनों भाई-वहिन एक झोंपड़ी में रहते हैं जो ब्राह्मणों के मुहल्ले में है। वचपन से कुसुम ब्राह्मणों की बेटियों के साथ खेलती-कूदती आ रही है। उन्हीं के साथ वह पण्डित की पाठशाला में पढ़ी है और स्यानी हुई है। अब भी ब्राह्मणी उसकी सखियाँ-सहेलियाँ हैं। इसी से पुरानी वातों को याद कर उसका शरीर लज्जा और घृणा से काँप जाता है। मलेरिया और हैजे से पीड़ित वङ्गाल में स्त्रियों को विधवा होते देर नहीं लगती। उसके वचपन की सखियों में से कई उसी की तरह हाथों की चूड़ियाँ फोड़ कर और माँग का सिन्दूर मिटा कर फिर अपने जन्म स्थान में लौट आई हैं। उनमें से कोई उसकी मकर-गङ्गाजल है और कोई महाप्रसाद (सहेलियों का मनगढ़न्त नाम)।

'तोवा-तोवा, भला मैं अपने भाई की वात मान कर इस जन्म में फिर अपना यह काला मुंह इस गाँव में किसी को दिखला सकूंगी ?'

कुँज ने कहा—'बहिन, यह वात मान लो तुम। सच पूछो तो तुम्हारे असली पति वृन्दावन ही हैं।'

कुसुम ने चिढ़ कर जवाव दिया—'भाई, मैं असल-नकल नहीं

जानती। केवल इतना ही जानती हूं कि मैं विधवा हूं। तुमने क्या मुझे कुत्ता-बिल्ली समझ रक्खा है कि जो इच्छा हो वही कर गुजरूं ? उधर ब्याह हुआ इधर कण्ठी बदली। और अब फिर ब्याह हो और फिर कण्ठी बदले ! जाओ, अब मेरे सामने ऐसी बातें मत करना। बड़ल वालों से मेरा कोई वास्ता नहीं, मेरे पति मर चुके हैं और मैं विधवा हूं।'

कुँज बेचारा इसके आगे कुछ भी न कह सका। अपनी इस पढ़ी-लिखी, तेजस्विनी बहिन के सामने वह सिटपिटा जाता। फिर भी वह सोचता है परन्तु एक तरफा। वह बहुत गरीब है। दो झौंपड़ियों और इनसे सटे हुये आम और कटहल के छोटे-से बगीचे के अलावा उसके पास और कुछ भी नहीं है। इसलिये धोती-डुपट्टे और इतना नकद रुपया उसके लिये मामूली चीज नहीं है। अगर, यह लालच छोड़ दिया जाय तो भी वह अपनी स्नेह-साजन बहिन को किसी जगह बिठा कर उसे सुखी देखकर खुद भी सुखी होना चाहता है।

उनके समाज में कण्ठी बदलने का रिवाज है, इसलिये उसकी माँ यह संस्कार कर गई। पर वह समझ नहीं पाता कि जब उसकी माँ मर गई है और कुसुम का पति वृन्दावन जब उसे घर ले जाने के लिये इतनी कोशिश कर रहा है तो ऐसे मौके को वह क्यों हाथ से जाने देना चाहती है ? क्यों उसकी ओर वह ध्यान नहीं देती है ? समाज के फौजदारों और छड़ीदारों की राय लेकर थोड़ा सा मासाला (चूड़ा-दही) ही तो भोग लगा देना है। विवाह का सारा खर्च तो वृन्दावन ही देगा और इसके बाद सब दुख-तकलीफों से छूट कर खुशी से रानी बनकर रहेगी। कैसी मूर्ख है कुसुम ! ओह, ओह, अगर वह खुद ही कुसुम होता। बस, कुँज हमेशा ही इस तरह की बातें सोचा करता था।

कुंज फेरी का काम करता है। सूत के नाड़े, माला, कंघी, सिंदूर, तेल, बच्चों के खेलने की गुड़िया इत्यादि कई प्रकार की चीजें एक बड़े से

दोने में सजा कर सर पर रख कर वह रोज ही दो-चार गाँवों में फेरी लगाया करता है। सौदा बेच कर जो कुछ कमाता, शाम को अपनी वहिन के हाथ पर रख देता। कुसुम कैसे मूलधन बनाये रख कर उन्हीं पैसों से गृहस्थी का काम चला लेती है, इस बात को न तो वह समझ सकता था और न समझने की कोशिश ही करता था।

घूमते-फिरते आज सवेरे ही वह वाड़ल गाँव में जा पहुँचा। रास्ते में ही उसकी भेंट वृन्दावन से हुई। वह कहीं बाहर जा रहे थे, पर कुंज को देख कर लौट पड़े। अपने इस रिश्तेदार को बड़े आदर से वे घर ले आये। हाथ-पैर धोने के लिये उसे पानी दिया और तमाखू चढ़ा कर उसकी खातिर की। उसकी माँ ने तरह तरह का भोजन बना कर कुंज को भर पेट भोजन कराया और किसी तरह भी उस कड़ी धूप में उसे वहाँ से जाने नहीं दिया।

शाम को कुंज घर लौटा, हाथ-पैर धोकर कुछ चना-चवेना खाने बैठा। उसने सारी वातें अपनी वहिन से कह सुनाईं और आखिर में यह भी कहा कि वह एक अच्छा गृहस्थ है। वाग-बगीचा, ताल खेती-बारी किसी तरह की कमी नहीं है। लक्ष्मी तो उनके घर में जैसे फटी पड़ती है।

सब वातें कुसुम ने चुपचाप सुनलीं। कुछ जवाब नहीं दिया। कुंज ने इसे एक अच्छा लक्षण समझा और बड़े विस्तार के साथ बतलाया कि वृन्दावन की माँ ने कैसी अच्छी २ चीजें बनायीं और कितना उसका आदर सत्कार किया और खिला-पिला लेने पर भी क्या वह मुझे छोड़ती थी! कहने लगी—'इतनी धूप में जाओगे तो सिर में दर्द होने लगेगा और बीमार पड़ जाओगे।'

अपने भाई के मुंह की ओर देख कर कुसुम ने मुस्कराते हुए कहा—'तो दिन भर आज तुम इसी काम में लगे रहे! बस पेट भर भोजन किया और सोये।'

कुंज ने भी हंसते हुए उत्तर दिया—'तो तुम्हीं बताओ न वहिन,

और क्या करता ? किसी तरह भी जब वह छोड़ती ही नहीं थी तो जबर्दस्ती मैं कैसे चला आता ?'

कुसुम ने कहा—'अच्छा, पर अब तुम उस गाँव में कभी मत जाया करो।'

कुँज इस बात को ठीक नहीं समझ सका। उसने पूछा—'क्यों न जाया करूं ?'

कुसुम ने कहा—'जब भी वे रास्ते में मिलेंगे, तुम्हें पकड़ ले जायेंगे। वे ठहरे बड़े आदमी। उनका तो कुछ नुकसान होगा नहीं, पर, इस तरह हमारा काम कब तक चलेगा ?'

बहिन की यह बात सुनकर कुँज को बहुत दुख हुआ।

कुसुम यह समझ गई और हंस कर बोली—'ना भइया, मैं यह नहीं कहती। एक-आध दिन जाने में भला कौनसा बड़ा नुकसान हो जाता है। परन्तु वे ठहरे बड़े आदमी और हम गरीब हैं। उनसे ज्यादा मेल-जोल बढ़ाने की हमें जरूरत ही क्या है ?'

कुँज ने कहा—'बहिन, मैं खुद तो उनके घर जाता नहीं।'

कुसुम—'बहुत अच्छा। अगर तुम स्वयं नहीं जाते और वे बुला कर ही ले जाते हैं, तो भी हमें जाने की क्या जरूरत है ?'

कुँज—'अगर, ऐसी बात है तो इन ब्राह्मण की लड़कियों से तुम क्यों इतना मेल-जोल रखती हो ? ये सब भी तो बड़े आदमियों की लड़कियाँ हैं फिर क्यों जाती हो ?'

अपने भाई के मन की बात समझ कर कुसुम हंसने लगी। उसने कहा—'उनके साथ तो मैं बचपन से खेलती आ रही हूं। इसके अलावा वे न तो हमारी जाति की हैं और न समाज की। उनके यहाँ जाने में हमारी लज्जा की कोई बात नहीं है। किन्तु, उनकी बात कुछ और है।'

थोड़ी देर चुप रह कर कुँज ने कहा—'ना, उनके यहाँ जाने में भी लज्जा की कोई बात नहीं। अवश्य ही उन पर लक्ष्मी की कृपा है और उनके पास चार पैसे भी हैं परन्तु छू कर भी अहंकार या घमण्ड उनमें नहीं है। जैसे सभी मिट्टी के पुतले हों। मेरे दोनों हाथ पकड़ कर वृन्दावन की माँ ने जिस तरह...'

उसकी बात काट कर और चिढ़ कर कुसुम ने कहा—'फिर वही बातें! हमारी माँ पर उन लोगों ने इतना कलङ्क लगाया था, शायद तुम भूल गये।'

कुँज ने प्रतिवाद करते हुए कहा—'एक बात भी उन लोगों ने किसी से नहीं कही है। डाह के कारण कुछ बदमाशों ने झूठमूठ ही बदनाम किया था।'

कुसुम ने कहा—'तभी उन लोगों ने मुझे घर से निकाल कर दूसरा व्याह कर लिया था, क्यों?'

कुँज ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—'सो तो ठीक है, पर बेचारे वृन्दावन का इसमें जरा भी हाथ नहीं था। यदि था तो उनके बाप का।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद कुसुम ने शान्त भाव से कहा—'अच्छा दादा, चाहे किसी का भी दोष हो परन्तु जो बात होने की नहीं है, उसे बार-बार दुहराने से क्या फायदा? जाने भी दो, मैं तुमसे बहस नहीं करती।'

बहिन की इस बात का जवाब पहले तो कुँज नहीं दे पाया पर, कुछ ठहर कर रुष्ट हो कर कहा—'तुम बहस तो नहीं करतीं परन्तु मुझे तो सब ओर से देखना है। जरा सोचो तो कि आज अगर, मैं मर जाऊं तो कल तुम्हारी क्या हालत होगी?'

कुसुम उदास हो गई थी, उसने कोई जवाब नहीं दिया।

फिर गम्भीर होकर कुँज कहने लगा—'अपने परिचित सभी

बड़े-बूढ़ों से मैं पूछ चुका हूं। नलडाँगे वाले बुड्ढ़े बाबा तक से तुम्हारी साख राय ले आया हूं। तुम जानती हो उन सबों ने बड़ी खुशी से अपनी राय दी है।'

कुसुम के मुंह का भाव सहसा कड़ा हो गया। परन्तु थोड़े में वह यही कह कर चुप हो गई—'हाँ जानती क्यों नहीं हूं ?'

मेरे बारे में, मेरी माँ के बारे में और मेरा कण्ठी बदलने के बारे में, समाज में आलोचना हो रही है और अच्छे-अच्छे लोगों की राय ली जा रही है, इस संवाद से कुसुम अत्यन्त क्रुद्ध हो गई। किन्तु अपना वह भाव दबा कर उसने पूछा—क्यों दादा, इस बेला तुम क्या खाओगे ?'

कुँज ने बहिन के मन का भाव समझ कर, मुँह भारी बना कर कहा—'कुछ नहीं, मुझे भूख नहीं है।'

कुसुम और क्रुद्ध होगई। वह अपनी कोठरी में चली गई।

वहीं बैठे-बैठे कुँज ने एक चिलम तमाखू चढ़ा कर पिया और हुक्का दीवाल के सहारे खड़ा करके पुकारा–'कुसुम !'

कुसुम अपनी कोठरीं में बैठी सिलाई कर रही थी। वहीं बैठे-बैठे उसने पूछा–'क्या है ?'

कुँज—'मैंने कहा, इतनी रात हो गई, कुछ खाने को नहीं बनाओगी ?'

कुसुम ने वहीं से जवाब दिया—'नहीं, आज कुछ नहीं बनेगा।'

कुँज—'यही तो पूछता हूं कि क्यों ?'

कुसुम ने बिगड़ कर कहा—'मुझ से सौ बार नहीं कहा जाता।'

यह बात सुनकर कुँज दनदनाता हुआ उसकी कोठरी में जा पहुँचा और चिल्लाकर बोला—'देख कुसुम, तू मुझे जला मत। अगर इस तरह परेशान किया करेगी तो फिर जिधर मुंह उठेगा, एक दिन उधर ही चल दूंगा, यह कहे देता हूं।'

कुसुम—'जाओ, अभी चले जाओ। इस तरह डोम-चमारों की तरह मैं घर में चीखने-चिल्लाने नहीं दूंगी। अगर, तबियत हो तो बाहर गली में जाकर जी भर कर चिल्ला लो।'

कुंज ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—'कम्बख्त! छोटी बहिन होकर तू बड़े भाई को घर से निकाल रही है?'

कुसुम ने कहा—'हाँ, निकाल रही हूं। तुम बड़े हो तो क्या जो चाहो, करोगे?'

बहिन का चेहरा देखकर कुंज मन ही मन कुछ चिढ़ गया। उसने कुछ नरम होकर कहा—'बता तो सही, मैंने क्या किया है?'

कुसुम—'बिना मुझसे पूछे तुम क्यों यहाँ से चले गये और उसके घर खा आये?'

कुंज—'क्यों, इसमें नुकसान क्या हो गया?'

कुसुम ने तेजी से कहा—'इसमें नुकसान क्या हो गया? बहुत बड़ा नुकसान हो गया। आज मना किये देती हूं, वहाँ फिर कभी मत जाना।'

कुंज बड़ा भाई था। झगड़े से अपनी हार मानने में उसे शर्म मालूम हुई। उसने कहा—'तू क्या मुझसे बड़ी है जो मुझ पर हुक्म चलाती है, मैं जहाँ चाहूं, जाऊंगा।'

कुसुम ने भी उसी तरह जोर से कहा—'नहीं, कभी नहीं जाने दूंगी। अगर, मैंने सुन लिया तो फिर अच्छा नहीं होगा दादा, मैं कहे देती हूं।'

कुंज अब की सचमुच ही डर गया। तो भी ऊपर से साहस दिखलाते हुए उसने कहा—'जाऊंगा तो मेरा क्या बिगाड़ लेगी?'

सिलाई का काम फेंक कर कुसुम जल्दी से उठ खड़ी हुई और चिल्ला कर बोली—'देखो, कहे देती हूं, मुझे गुस्सा मत चढ़ाओ। चले जाओ मेरे सामने से। कह रही हूं, हट जाओ।'

सिटपिटा कर कुंज कोठरी के बाहर निकल आया और

दरवाजे की आड़ में खड़ा होकर धीरे से बोला–'तेरे डर के मारे हट जाऊँगा। यदि मैं वहाँ जाऊँगा तो तू मेरा क्या बिगाड़ लेगी !'

कुसुम ने कोई जबाव नहीं दिया। चिराग की बत्ती तेज कर वह फिर सीने लगी। आड़ में खड़े कुँज की हिम्मत फिर बढ़ गई। उसने अपनी आवाज कुछ और तेज करके कहा–'कहते हैं, कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है। अपने डायन-सी चिल्लायेगी तो कोई हर्ज नहीं और मैं तनिक जोर से बोल दूं तो...'

यह कह कर कुँज रुक गया। परन्तु जब इसका भी अन्दर से कुछ प्रतिवाद नहीं हुआ तो वह मन ही मन बहुत संतुष्ट हुआ। जाकर वह अपना हुक्का उठा लाया और अपने गले की आवाज कुछ तेज करके कहा–'जब मैं बड़ा हूं, घर का मालिक हूं तो सब काम मेरी मर्जी से होगा।'

यह कह कर कुँज ने वह जली हुई चिलम उलट दी और फिर से तम्बाकू चढ़ाते २ जोर से बोला–'किसी की बात सुनने की मुझे जरूरत नहीं, मैं बार २ 'नहीं' नहीं सुन सकता। जब मैं घर का मालिक हूं, जब घर-बार सब मेरा है तो मैं जो कहूंगा, वही…'

सहसा उसने पीछे पैरों की आहट सुनी और जब घूम कर देखा तो चुप रह गया।

चुपचाप आकर कुसुम तेज निगाह से उसकी ओर देखती रही। उसने कहा—'बैठे-बैठे तुम कलह करोगे या जाओगे यहाँ से ?'

छोटी बहिन की इस तेज निगाह के सामने बड़े भाई के मालिक बनने का सारा हौसला जाता रहा। उसके मुंह से जल्दी कोई बात ही नहीं निकली। कुसुम ने फिर उसी तरह कहा—'दादा, बताओ, यहां से जाओगे या नहीं ?'

अब न तो वह कुँजनाथ रह गया था और न उसकी वह आवाज। भर्राई आवाज में उसने कहा—'हुक्का चढ़ाकर अभी जा रहा हूं।'

हाथ बढ़ा कर कुसुम ने कहा—'लाओ मुझे दो।'

यह कह कर उसके हाथ से चिलम ले कर वह चली गई। फिर थोड़ी देर में वह लौट आई और हुक्के पर चिलम रख कर उसे देती हुई बोली—'सुनारों की दुकान पर जाओगे न ?'

सिर हिला कर कुंज ने कहा—'हाँ।'

कुसुम ने सहज भाव से कहा—'अच्छा जाओ। पर, देखो ज्यादे रात मत कर देना। रसोई बनाते मुझे देर नहीं लगेगी।'

हाथ में हुक्का लिये कुंजनाथ धीरे २ बाहर चला गया।

२

वृन्दावन के घर का जो परिचय उस दिन कुँज ने अपनी वहिन को दिया था उसमें किसी तरह की अत्युक्ति नहीं थी। उनके घर में सचमुच ही लक्ष्मी फटी पड़ती थी। और इसके लिये उनके घर में किसी को किसी तरह का अहंकार या अभिमान नहीं था।

उस गाँव में कोई पाठशाला नहीं थी। अपनी ही कोशिश से वृन्दावन ने बचपन में कुछ लिखना-पढ़ना सीख लिया था और तव से ही अपने गाँव में एक पाठशाला खोलने का निश्चय किये थे। किन्तु, उसके पिता गौरदास वड़े चालाक आदमी थे। वृन्दावन उनका इकलौता बेटा था फिर भी ऐसे बेकार काम में उन्होंने अपने बेटे को प्रश्रय नहीं दिया। किन्तु उनकी मौत के बाद वृन्दावन ने उस तरह की एक पाठशाला अपने चण्डी-मण्डप में खोल दी जिसमें बालकों को नि:शुल्क पढ़ाया जाता था और इस तरह उसने अपने निश्चय को कार्य रूप में वदल दिया।

उनके मुहल्ले में एक पुराने शिक्षक थे जिन्हें पेन्शन मिलती थी। अंग्रेजी सिखाने के लिये वृन्दावन ने उन्हें रख लिया। रात को धीरे से आकर वे पढ़ा जाया करते थे इसलिये यह बात गुप्त ही रही। गाँव में कोई यह बात नहीं जानता था कि वैष्णव वृन्दावन अंग्रेजी भी पढ़े हैं। पाँच साल पहले जब उनकी स्त्री मर गई तो वे इस पढ़ने-लिखने में ही लगे रहते थे। रात को पढ़ा करते, सवेरे घर की जमीदारी आदि का काम देखते और अपनी स्थापित पाठशाला

में दोपहर को किसान वालकों को पढ़ाया करते। उनकी विधवा माता जब फिर से विवाह करने के लिये आग्रह करती तो वे अपने शिशु पुत्र को दिखला कर कहते कि जिसके लिए विवाह किया जाता हैं, वह तो मेरे पास ही है। तो फिर विवाह करने की जरूरत ही क्या है ?

माँ बहुत रोती-गिड़गिड़ाती पर वे कुछ नहीं सुनते। इस तरह दो साल वीत गये।

उसके वाद वृन्दावन ने अचानक एक दिन कुसुम को कुँज वैष्णव के मकान के सामने देखा। नदी से नहा कर और पानी की एक कलसी कमर पर रक्खे हुए कुसुम घर आरही थी। उस समय उसने यौवन में कदम रक्खा था। मंत्र मुग्ध की तरह वृन्दावन उसे देखते रह गये। जव वह अन्दर चली गई तो धीरे २ आगे वढ़ गये। इस गाँव के सभी घरों को वे वखूवी जानते थे इसलिये उन्हें यह जानते देर नहीं लगी कि यह किशोरी कौन है।

एक सन्तान हो जाने पर माँ-वेटे में जो रिश्ता होता है, वही रिश्ता वृन्दावन में और उनकी माँ में था। घर पहुँच कर अपनी माँ से निःसंकोच कुसुम की वात कह दी। माँ ने कहा—'अरे वेटा, क्या ऐसा भी हो सकता है ? उन लोगों में तो दोष है !' वृन्दावन ने जवाव दिया—'हुआ करे माँ, परन्तु आखिर है तो तुम्हारी वहू ही। जव मेरा विवाह वहाँ किया था, तभी क्यों नहीं सोचा ?'

माँ ने कहा—'वह सव तुम्हारे वावूजी जानते थे। जो अच्छा समझा, वे कर गये।'

वृन्दावन ने अभिमान पूर्वक कहा—'तो यही सही माँ, मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा, तुम मुझे अव विवाह के लिये परेशान मत करना।'

यह कह कर वृन्दावन वाहर निकल गये।

यह सव तीन साल पहले की वात है। वृन्दावन की माता ने इस वीच कुसुम को अपने घर लाने की काफी कोशिश की किन्तु उसका कुछ लाभ नहीं हुआ। किसी तरह भी कुसुम को राजी नहीं किया जा

सका। कुसुम के विरोध की दो खास वजह थीं। एक तो यह कि असमर्थ और मन्दबुद्धि भाई को अकेला छोड़ वह कहीं भी सुख से नहीं रह सकती थी और दूसरी वजह हम पहले ही बता चुके हैं। अगर, किसी तरह का सामाजिक संस्कार किये बिना आसानी से ही वह अपने पति के घर जा कर सुख से रह सकती तो शायद, वह अपने भाई के अनुरोध और आग्रह को इस तरह जी-जान से नहीं टालती। परन्तु वह सोचती कि फिर से कहीं काम करने होंगे, वैष्णवों के तरह २ के दल आकर खड़े होंगे, मेरे माँ के मिथ्या कलङ्क की चर्चा छिड़ेगी, मेरे बचपन की बीती हुई सारी घटनाओं की बात होगी। और भी न जाने कितनी बातें हों, शोर-गुल मचेगा और कौतूहलवश पास-पड़ौस के लोग देखने आ जायेंगे। मेरी सब सहेलियाँ उत्सुकता से इधर-उधर ताक-झाँक लगायेंगी और अपने घर जाकर हँसी उड़ायेंगी कि कुसुम का विवाह डोम-चमारों की तरह हो गया। तोबा-तोबा! इन सब बातों को सोच कर ही वह मारे लाज के गड़ जाती है। भले आदमियों की जिन लड़कियों के साथ बैठ कर उसने पढ़ना-लिखना सीखा है, जिनके साथ वह इतनी सयानी हुई है, दरिद्र होने पर भी अपने मन में वह विचार उसने कभी नहीं आने दिया कि आचार-विचार में मैं उन लोगों से किसी तरह छोटी हूं।

कल शाम को अपने भाई के साथ कुसुम की कहा-सुनी हो गई थी। गुस्से में आकर काठ की सन्दूक की चाबी उसने अपने भाई के पैरों के पास फेंक दी थी और कहा था कि जो भी हो जाय परन्तु इस संसार में अब मैं नहीं रहूंगी। आज सबेरे जब वह नदी से नहा कर लौटी तो देखा कि भाई घर में नहीं है, कहीं चला गया है, फेरी वाला भी घर में नहीं है। मन ही मन हँसते कुसुम ने कहा—'कल रात को डाँट सुन कर दादा आज सबेरे ही भाग निकले। निःसन्देह कल की अपनी भूल सुधारने के लिए ही आज वह चल दिया है।' परन्तु कुसुम का अनुमान गलत निकला। जो उसने सोचा था ऐसी बात नहीं हुई, जो थोड़ी देर बाद प्रगट होगई।

सवेरे ही उठ कर हमेशा कुसुम को घर का काम करना पड़ता था। सारा घर-आँगन गोवर से पोतना पड़ता था और आँगन को साफ करना पड़ता था। तव नदी से नहा कर जल भर लाना पड़ता और अपने भाई के लिये रसोई वनानी पड़ती। खाना खाकर कुँज जब फेरी पर निकल जाता तव पूजा-पाठ करने वैठती। कुँज जिस दिन विना भोजन किये हुए सवेरे ही निकल जाता उस दिन दोपहर को वह घर लौट आता था। कुसुम ने भाई के आने में देर समझी, इसलिये फल तोड़ने लगी। आँगन में एक ओर फ़लों के कुछ पौधे, कुछ चमेली और जूही के भी थे। अपनी रोजाना की पूजा के लिये वह उसी में से फ़ूल तोड़ लिया करती थी। फ़ूल तोड़ कर तथा और सव तैयारी करके ज्यों ही वह पूजा पर वैठी कि उसके दरवाजे पर कई वैलगाड़ियाँ आ खड़ी हुईं और उसके वाद एक प्रौढ़ा स्त्री धक्के से दरवाजा खोल कर अन्दर आ गई। कुछ देर तक दोनों ही एक दूसरी को देखती रह गईं। कुसुम ने उसे पहचाना नहीं परन्तु नाक पर तिलक और गले में माला देख कर वह समझ गई कि वह चाहे जो भी हो पर है उसी की जाति की।

पास पहुँच कर प्रौढ़ा ने हँसते हुए कहा—'तुम तो मुझे नहीं पहचानती होगी वेटी, परन्तु तुम्हारे दादा पहचानते हैं। कहाँ हैं कुँजनाथ?'

कुसुम ने कहा—'वे तो आज सवेरे से ही कहीं चले गये हैं। मालूम होता है देर से आवेंगे।'

आगन्तुक स्त्री ने आश्चर्य से कहा—'ऐं, देर से आवेंगे! अभी कल ही तो वह अपने वहनोई और चार-पाँच अन्य लड़कों को जो रिश्ते में हमारे भानजे होते हैं, खाने का न्यौता दे आये हैं। इसलिये मैंने भी आज सवेरे ही वृन्दावन से कह दिया कि वेटा कह दो गाड़ीवान से कि गाड़ी जोतकर ले आये, मैं भी चल कर वहू को जरा देख आऊं और आशीर्वाद दे आऊं।'

सुनकर कुसम स्तम्भित रह गई। परन्तु तुरन्त ही उसने अपने आप को सम्भाल लिया और माथे का आँचल कुछ और आगे खींचकर,

जल्दी से प्रणाम करके उठ खड़ी हुई। कोठरी में से आसन लाकर विछा दिया और आप चुपचाप खड़ी हो गई। कुसुम ने समझ लिया कि ये सास हैं। आसन पर बैठकर वे हंसते हुए बोलीं—'वृन्दावन ने कल खा-पी चुकने के बाद हसते हुए कहा कि मैं ऐसा अभागा हूं कि कुँज दादा हैं तो मेरे वड़े भाई की तरह परन्तु आज तक इन्होंने मुझसे यह भी न कहा कि कल आकर हमारे यहाँ एक लुटिया पानी पी आना। इधर कई दिनों से मेरी ननद के लड़के भी हमारे ही यहाँ हैं। इस पर कुँजनाथ ने हंसते हुए उन सव को भी न्यौता दे दिया, इसलिये, वे भी आये हैं।'

सिर झुकाये हुये कुसुम चुपचाप खड़ी रही।

वृन्दावन की माँ निम्न श्रेणी की मामूली औरतों की तरह नहीं थी। वह वहुत समझदार थी। कुसुम का भाव देखकर उसे संदेह हुआ कि कुछ न कुछ गड़बड़ी अवश्य हुई है। सन्दिग्ध भाव से उसने पूछा—'क्यों बहू, कुँजनाथ क्या तुम से कुछ भी नहीं कह गये हैं ?'

घूंघट के अन्दर से ही सिर हिलाकर कुसुम ने बतलाया–'नहीं।'

परन्तु वृन्दावन की माँ ने यह नहीं समझा, बल्कि उन्होंने सोचा कि वह कह कर नहीं गया है। इसलिये संतुष्ट होकर बोली—'तब तो ठीक है।' इसके बाद कुँजनाथ के उद्देश्य से स्नेहपूर्वक कहा–'डर था, कहीं मेरा पागल बेटा सब बातें भूल न जाय ! तब तो समझती हूं कि वह कुछ सौदा आदि खरीदने गया है, थोड़ी देर में आ ही जायगा। लो, ये सब आ ही गये।'

वाहर से एक बार वृन्दावन ने पुकारा–'कुँज भइया !' और इसके बाद सहसा आँगन में आ खड़े हुए। उनके साथ भी तीन लड़के थे। यही उनके थे। यही उनके फुफेरे भाई थे। उनकी माँ ने कहा–'कुँजनाथ अभी वाहर गये हैं और वहू, अन्दर जरा शतरंजी विछा दो, ये लोग वैठ जाँय।'

कुसुम ने कुछ घवरा कर अपने भाई की कोठरी में एक कम्वल

बिछा दिया और हाथ में चिलम लेकर तम्बाकू चढ़ाने के लिये रसोई घर में चली गई।

यह देखकर वृन्दावन ने हँसते हुए कहा—'रहने दो, हम लोग तम्बाकू नहीं पीते।'

चिलम रख कर कुसुम रसोईघर में एक खम्बे के सहारे चुपचाप खड़ी हो गई। उसका विवेकशून्य बेवकूफ भाई कैसी आफत में डालकर खिसक गया। क्रोध, अभिमान, लज्जा और अवश्यम्भावी अपमान की आशङ्का से उसकी आंखों में आँसू भर आये। उसके भंडार की सभी चीजें कल ही खत्म हो गईं। आज सवेरे नहाने जाने से पहले वह सोचती गई थी कि लौट कर आऊंगी तो दादा को हाट भेजूंगी। परन्तु लौट कर देखा तो भाई का कहीं पता नहीं था। कुंज जब कोई गलती कर बैठता है तो वह अपनी छोटी बहिन से इतना डरता है कि उतना कोई नौकर अपने मालिक से भी नहीं डरता होगा। जिन बड़े आदमियों के घर केवल भोजन कर आने के अपराध में कुसुम इतनी अधिक गुस्सा हुई थी, ताव में आकर कुंज उन्हीं आदमियों को दलबल के साथ न्यौता दे आया था। यह अपराध उस पहले अपराध से भी बड़ा था इसलिये अपनी बहिन से कुछ कह सकने का उसे साहस ही नहीं हुआ। इसलिये सवेरे ही उठ कर वह भाग गया। परन्तु, अब चाहे जो कुछ भी हो, पर, वह रात से पहले घर नहीं लौटेगा। यह तय जान कर कुसुम आशङ्का से विकल हो गई और सब से बढ़कर आफत यह हुई कि जिस सन्दूक में उसके इकट्ठे किये हुये थोड़े से रुपये थे, उसकी चाबी भी उसके पास नहीं थी और ऊपर हाथ में भी उसके एक पैसा भी नहीं था।

निरुपाय होकर कुसुम करीब पाँच मिनट खड़ी रही। इसके बाद अचानक उसका सारा क्रोध वृन्दावन पर रस पड़ा। वास्तव में, सारा दोष इन्हीं का है। उसके नासमझ भाई को रास्ते में से क्यों वे घर पकड़ ले गये और उससे यह परिहास किया? और कौन होते हैं वे जो दादा उन्हें घर बुलाकर भोजन करावें?

इधर तीन साल से अनेक बहानों से अनेक उपायों से वृन्दावन इधर आते-जाते रहते हैं और कितनी ही तरह से भाई-बहिन के मन की थाह लेने की कोशिश करते रहे हैं। कई बार सुबह शाम [illegible] भी मकान के सामने से गुजर गये हैं। हम कैसी बुरी हालत में हैं, [illegible] वे अच्छी तरह जानते हैं इसलिये हमें नीचा दिखलाने के लिए जान-बूझ कर यह कौशल रचा गया है।

काठ की मूर्ति-सी कुसुम अपनी आँखों से आँसू पोंछती रही। वह बड़ी अभिमानिनी है परन्तु इस समय वह अकेली है. [illegible]

वृन्दावन की माँ तो उठकर भीतर जा कर लड़कों [illegible] करने लगी परन्तु, उसके लड़के की नजर कोठरी के बाहर [illegible] भटकती रही। सहसा उसकी नजर रसोई घर में [illegible] पड़ी। जब आँखें चार हुईं तो वृन्दावन ने समझा कि [illegible] उन्हें पास बुला रही है। क्षण भर के लिये [illegible] उछल कर स्थिर हो गया। उन्होंने सोचा कि [illegible] मेरी आँखों की भूल है।

वृन्दावन सोचने लगे कि संयोगवश [illegible] खींच कर जल्दी से परे हट जाती है, [illegible] अरुचि की बात कितनी बार कुंजनाथ [illegible] स्वयं मुझे अपने पास बुलावेगी? यह [illegible] वृन्दा-वन ने अपनी निगाह दूसरी ओर फेर ली। [illegible] ठहर सकी।। जिस जगह आँखें मिली थीं फिर [illegible] सचमुच, कुसुम उन्हीं की ओर देख रही है। [illegible] इशारे से बुलाया।

लड़खड़ाते हुए वृन्दावन ने रसोई घर के [illegible] स्वर में पूछा—'मुझे बुलाया है?'

कुसुम ने भी उसी तरह कोमल स्वर में कहा—हाँ।

वृन्दावन ने कुछ और खिसक कर पूछा—क्यों?

कुछ देर तक चुप रहने के बाद कुसुम ने गंम्भीर स्वर में कहा—'मैं तुम से यह पूछती हूं कि हमारे जैसे दीन-दुखियों को इस तरह सताने से तुम जैसे बड़े आदमियों की कौन-सी बहादुरी हो जाती है?'

एं! अचानक यह कैसा अभियोग! वृन्दावन चुप खड़े रहे।

कुसुम ने कुछ और कड़ी आवाज में कहा—'क्या तुम्हें नहीं मालूम कि हम किस तरह अपने दिन काट रहे हैं? फिर, दादा से हँसी क्यों की? इतने आदमियों को लेकर क्यों खाने आये?'

वृन्दावन पहले तो समझ ही न सके कि इस अभियोग का वे क्या जबाब दें; परन्तु स्वभावतः वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। किसी भी वजह से अधिक विचलित नहीं होते। थोड़ी देर के बाद उन्होंने अपने आपको सम्भाल कर अत्यंत सहज और शाँत भाव से पूछा—'कुंज दादा कहाँ है?'

कुसुम ने कहा—'पता नहीं। मुझसे विना कुछ कहे-सुने तड़के ही उठ कर कहीं चले गये।'

कुछ देर तक चुप रहने के बाद वृन्दावन ने कहा—'खैर, गये तो जाने दो, मैं तो हूं। घर में खाने-पीने को क्या कुछ भी नहीं है?'

'ना, कुछ भी नहीं। सभी चीजें खत्म हो गई हैं और इस वक्त एक पैसा भी मेरे पास में नहीं है।'

वृन्दावन ने कहा—'तुम्हारी ही तरह मुझे इस गाँव में सभी जानते हैं। मुझे एक गम्छा दे दो, सभी चीजें खरीद कर मैं मोदी से भिजवा देता हूं। मैं अभी नहाकर आता हूं। अगर माँ पूछे तो कह देना कि नहाने गये हैं। अब तुम यहाँ खड़ी मत रहो, जाओ।'

कुसुम ने भीतर कोठरी में से एक गम्छा लाकर दे दिया।

गम्छा माथे पर लपेटते हुए वृन्दावन ने हँसकर कहा—'तुम कुंज दादा की बहिन हो, इसलिये वे तुम्हें इस तरह छोड़कर भाग सके हैं। अगर, तुम कोई और होतीं तो शायद, इस तरह छोड़कर वे नहीं जा सकते थे।'

कुसुम ने खूब धीरे से जबाव दिया—'सभी तो इस तरह नहीं छोड़ सकते परन्तु कुछ ऐसे हैं जो बड़े मजे में छोड़ सकते हैं।'

यह कहकर कुसुम ने ओट में से ही देखा कि इस बात ने वास्तव में उनके हृदय पर कैसी चोट पहुँचाई है।

वहाँ से जाने के लिये वृन्दावन ने कदम उठाया कि फिर रुक-कर धीरे से बोले—'तुम्हारा यह बहम शायद, किसी दिन टूट जाय। बचपन में अपनी माँ के किसी दोष के लिये जैसे तुम जबावदेह नहीं हो, उसी तरह अपने पिता के दोष के लिये मैं भी जबावदेह नहीं हूं। परन्तु छोड़ो भी, इन सब झगड़ों के लिये अभी काफी समय है। जाओ, रसोई की तैयारी करो।'

कुसुम ने कहा—'बताओ तो कि मैं रसोई की क्या तैयारी करूं? अगर, तुम लोगों का पेट भरे तो कहो मैं अपना सर काट कर पकाने के लिये तैयार हूं।'

दो-एक कदम बढ़कर वृन्दावन फिर लौट आये और इस बात का कोई जवाब न दे अपनी आवाज और धीमी करके बोले—'तुम जो चाहो, मुझ से कह सकती हो। मुझे तो बर्दास्त करना ही पड़ेगा। परन्तु इस गुस्से की हालत में अपनी सास से कुछ मत कह बैठना। उन्हें तनिक-सी बात भी बहुत लगती है।'

कुसुम ने गुस्से में फिसफिसाकर कहा—'मैं कोई जानवर नहीं हूं, मुझ में थोड़ी सी अक्ल है।'

वृन्दावन ने कहा—'सो तो मैं जानता हूं और यह भी जानता हूं कि अक्ल की बनिस्वत गुस्सा कहीं अधिक है। हाँ कुसुम, एक बात और, माँ नहाकर ही चली आई है, अभी तक कुछ पूजा-पाठ नहीं किया है। पूछकर सबसे पहले उनका इन्तजाम कर दो। मैं चला।'

कुसुम—'जाओ परन्तु देखना कहीं गप्प मत लड़ाते रह जाना।'

कुछ हंसकर वृन्दावन ने कहा—'नहीं, परन्तु तबियत होती है कि देर करके तुमसे कुछ झिड़कियाँ सुनूं। अगर, कभी

कुछ देर तक चुप रहने के बाद कुसुम ने गंम्भीर स्वर में कहा—'मैं तुम से यह पूछती हूं कि हमारे जैसे दीन-दुखियों को इस तरह सताने से तुम जैसे वड़े आदमियों की कौन-सी वहादुरी हो जाती है ?'

ऐं ! अचानक यह कैसा अभियोग ! वृन्दावन चुप खड़े रहे ।

कुसुम ने कुछ और कड़ी आवाज में कहा—'क्या तुम्हें नहीं मालूम कि हम किस तरह अपने दिन काट रहे हैं ? फिर, दादा से हँसी क्यों की ? इतने आदमियों को लेकर क्यों खाने आये ?'

वृन्दावन पहले तो समझ ही न सके कि इस अभियोग का वे क्या जवाव दें; परन्तु स्वभावत: वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे । किसी भी वजह से अधिक विचलित नहीं होते । थोड़ी देर के बाद उन्होंने अपने आपको सम्भाल कर अत्यंत सहज और शाँत भाव से पूछा—'कुँज दादा कहाँ है ?'

कुसुम ने कहा—'पता नहीं । मुझसे विना कुछ कहे-सुने तड़के ही उठ कर कहीं चले गये ।'

कुछ देर तक चुप रहने के वाद वृन्दावन ने कहा—'खैर, गये तो जाने दो, मैं तो हूं । घर में खाने-पीने को क्या कुछ भी नहीं है ?'

'ना, कुछ भी नहीं । सभी चीजें खत्म हो गई हैं और इस वक्त एक पैसा भी मेरे पास में नहीं है ।'

वृन्दावन ने कहा—'तुम्हारी ही तरह मुझे इस गाँव में सभी जानते हैं । मुझे एक गम्छा दे दो, सभी चीजें खरीद कर मैं मोदी से भिजवा देता हूं । मैं अभी नहाकर आता हूं । अगर माँ पूछे तो कह देना कि नहाने गये हैं । अव तुम यहाँ खड़ी मत रहो, जाओ ।'

कुसुम ने भीतर कोठरी में से एक गम्छा लाकर दे दिया ।

गम्छा माथे पर लपेटते हुए वृन्दावन ने हँसकर कहा—'तुम कुँज दादा की बहिन हो, इसलिये वे तुम्हें इस तरह छोड़कर भाग सके हैं । अगर, तुम कोई और होतीं तो शायद, इस तरह छोड़कर वे नहीं जा सकते थे ।'

कुसुम ने खूब धीरे से जवाब दिया—'सभी तो इस तरह नहीं छोड़ सकते परन्तु कुछ ऐसे हैं जो बड़े मजे में छोड़ सकते हैं।'

यह कहकर कुसुम ने ओट में से ही देखा कि इस बात ने वास्तव में उनके हृदय पर कैसी चोट पहुँचाई है।

वहाँ से जाने के लिये वृन्दावन ने कदम उठाया कि फिर रुक-कर धीरे से बोले—'तुम्हारा यह वहम शायद, किसी दिन टूट जाय। बचपन में अपनी माँ के किसी दोष के लिये जैसे तुम जवाबदेह नहीं हो, उसी तरह अपने पिता के दोष के लिये मैं भी जवाबदेह नहीं हूं। परन्तु छोड़ो भी, इन सब झगड़ों के लिये अभी काफी समय है। जाओ, रसोई की तैयारी करो।'

कुसुम ने कहा—'बताओ तो कि मैं रसोई की क्या तैयारी करूं? अगर, तुम लोगों का पेट भरे तो कहो मैं अपना सर काट कर पकाने के लिये तैयार हूं।'

दो-एक कदम बढ़कर वृन्दावन फिर लौट आये और इस बात का कोई जवाब न दे अपनी आवाज और धीमी करके बोले—'तुम जो चाहो, मुझ से कह सकती हो। मुझे तो बर्दास्त करना ही पड़ेगा। परन्तु इस गुस्से की हालत में अपनी सास से कुछ मत कह बैठना। उन्हें तनिक-सी बात भी बहुत लगती है।'

कुसुम ने गुस्से में खिसियाकर कहा—'मैं कोई जानवर नहीं हूं, मुझ में थोड़ी सी अक्ल है।'

वृन्दावन ने कहा—'सो तो मैं जानता हूं और यह भी जानता हूं कि अक्ल की बनिस्बत गुस्सा कहीं अधिक है। हाँ कुसुम, एक बात और, माँ नहाकर ही चली आई है, अभी तक कुछ पूजा-पाठ नहीं किया है। इसलिये सबसे पहले उनका इन्तजाम कर दो। मैं चला।'

कुसुम—'जाओ परन्तु देखना कहीं गप्प मत लड़ाते रह जाना।'

कुछ हंसकर वृन्दावन ने कहा—'नहीं, परन्तु तबियत होती है कि देर करके तुमसे कुछ झिड़कियाँ सुनूं। अगर, कभी और के

लिये तुम उम्मीद दिलाओ तो हो सकता है कि आज मैं जल्दी ही लौट आऊं ।'

'खैर, देखा जायगा ।'

यह कहकर कुसुम रसोईघर में जा रही थी कि वृन्दावन ने एक ठण्डी साँस लेते हुए अचानक नर्म स्वर में कहा—'आश्चर्य ! एक बार भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि आज तुम मुझसे पहले-पहल बातें कर रही हो । लगता है, जैसे युग-युग से तुम मुझ पर इसी तरह शासन करती आ रही हो । ईश्वर के हाथ से बाँधा गया यह बन्धन कैसा विलक्षण है कुसुम ।'

कुसुम खड़ी २ सुनती रही, उसने कोई जवाब नहीं दिया ।

वृन्दावन के चले जाने पर, अपनी पिछली बातें याद कर सहसा कुसुम का सारा शरीर काँप गया । रसोई घर में जाकर स्थिर होकर वह बैठ गई । आजतक जिसे वह अपनी शिक्षा के अभिमान से एक अशिक्षित किसान ही समझती आ रही थी, आज की बातचीत और व्यवहार से उसके बारे में एक नये आनन्द और नयी चाह से वह उत्सुक हो उठी ।

२

शाम होने से पहले ही उस दिन घर लौटते समय वृन्दावन की माँ ने कुसुम को पास बुला कर अश्रु-गद्गद स्वर से कहा-'आज का दिन कितने आनन्द से गुजरा, इसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। बेटी, तुम सदा सुखी रहो।' यह कह कर अपने आँचल से सोने का एक जोड़ी कड़ा निकाल कर अपने हाथ से उसने कुसुम के हाथों में पहना दिया।

वृन्दावन की माँ को यह मालूम हो गया था कि आज का सारा आयोजन छिपे तौर पर वृन्दावन द्वारा दी गई सहायता से ही हुआ है और खास कर इसी विजय से उसका हृदय आशा और आनन्द से परिपूर्ण हो गया था। गले में आँचल डाल कर कुसुम ने उन्हें प्रणाम किया, पद-धूलि माथे पर लगा कर चुपचाप खड़ी हो गई। सास-बहू में इस बारे में और कुछ बात-चीत नहीं हुई। गाड़ी पर बैठ कर उन्होंने बहू से कहा—'बेटी, कुञ्जनाथ तो दिन भर दिखलाई नहीं दिया। पता नहीं, वह पागल दिन भर कहाँ गायब रहा। कल उसे एक बार मेरे पास भेज देना।'

कुसुम ने सिर हिला कर कहा—'अच्छा।'

वृन्दावन के पिता ने गौरांग-महाप्रभु की एक मूर्ति की स्थापना अपने घर में की थी। उसी कमरे में बैठ कर वृन्दावन की माँ रोज ही बड़ी रात तक पूजा किया करती थी। आज भी कर रही थी। गोद में सर रखकर नाती सो गया था। जिस जगह पर ये लोग बैठे थे वहाँ

चिराग की छाया पड़ रही थी, इसलिये वृन्दावन जब उस कमरे में आये तो इन लोगों को देख न सके। वेदी के पास पहुँच कर घुटने टेक कर वे बैठ गये। मन ही मन कुछ देर प्रार्थना कर के जमीन पर झुक कर उन्होंने प्रणाम किया और जब वे उठ कर खड़े हुए तब उनकी नजर माँ पर पड़ी। मन ही मन लज्जित होकर वे हँस पड़े और पूछा—'माँ, तुम इतने अन्धेरे में क्यों बैठी हो ?'

माता ने सस्नेह कहा—'यों ही बेटा, तू जरा मेरे पास बैठ।'

वृन्दावन पास जाकर बैठ गया।

वृन्दावन के लज्जित होने की वजह थी। रात एक पहर से अधिक गुजर चुकी थी। ऐसे असमय में वे कभी दर्शन करने नहीं आते थे। आशातीत सौभाग्य के कारण मारे आनन्द के उनका हृदय भर गया था। आज का दिन उन्हें बहुत ही सार्थक लग रहा था और आज नम्र हृदय से, छिप कर ठाकुर जी से उसी का निवेदन करने के लिये आये थे। किन्तु, माँ को इस बात की टोह न लग जाय इसी कारण वे मारे लज्जा के गढ़-से गये।

कुछ देर बाद माँ ने अपने सोये हुए पोते का सर हाथ से सहलाते हुए, उच्छवसित होकर सस्नेह कहा—'अपने इस एक मात्र वंशधर को मातृहीन छोड़ कर कहीं जाने के लिए मैं एक कदम भी नहीं उठा सकती थी। परन्तु, मुझे ऐसा लगता है वृन्दावन, जैसे आज किसी ने मेरे सर का बोझ उतार दिया है। अब तो उसे जल्दी घर ले आओ बेटा, ताकि उसे सब कुछ सौंप कर मैं कुछ दिन काशी और वृन्दावन घूम आऊँ।'

वृन्दावन के हृदय में भी आज आशा और विश्वास का वैसा ही श्रोत बह रहा था। फिर भी उन्होंने ससंकोच कहा—'परन्तु वह आने क्यों लगी माँ।'

माँ ने निश्चित और दृढ़ स्वर में कहा—'क्यों, आवेगी क्यों

हीं ? उसके आने पर ही तो मुझे छुट्टी मिल सकेगी ? यह मेरी लती थी जो वृन्दावन इतने दिनों तक मैं स्वयं नहीं गई। अपने हाथ का सुनहला कड़ा पहना कर मैंने उसे आशीर्वाद दिया और वह मेरे रों की धूल माथे से लगा कर खड़ी हो गई। तभी मैं जान गई कि नेरे माथे का सारा बोझ उतर गया। देख लेना, अच्छा दिन होते ही घर की लक्ष्मी मैं घर ले आऊँगी।'

थोड़ी देर तक चुप रह कर वृन्दावन ने कहा—'परन्तु, आकर तुम्हारे इस वंशधर की वह देख भाल करेगी न ?'

माँ ने तुरन्त जबाब दिया—'क्यों नहीं करेगी ? उसका डर मुझे नहीं है।'

'क्यों नहीं है ?'

'मैं सोना पहचानती हूं बेटा ! अभी यह तो नहीं कह सकती कि सोना खरा है या नहीं परन्तु इतना तय है कि वह पीतल या मुलम्मा नहीं है। अगर ऐसी बात नहीं होती तो अपनी सोने-सी गृहस्थी में उसे लाने का मैं नाम नहीं लेती। क्यों, वृन्दावन, बहू क्या तुमसे हमेशा ही बातें किया करती है ?'

वृन्दावन ने कहा-'नहीं माँ कभी नहीं। परन्तु मालूम होता है कि सङ्कट में पड़ कर ही आज.........।' यह कह कर वृन्दावन कुछ हंसे और चुप रह गये।

कुछ देर चुप रहने के वाद माँ ने गम्भीर स्वर में कहा—'सो तो ठीक ही है बेटा, इसमें उसकी गलती नहीं है। ऐसा तो सभी करते हैं। वास्तव में जो उसका अपना होता है वही दौड़ कर उसके पास जाता है। यद्यपि मैं औरत हूं, फिर भी सङ्कट की बात मुझसे न कह कर उसने तुम्हीं से कही।'

वृन्दावन चुपचाप सुनते रहे।

४

कुञ्जनाथ की शादी की लेन-देन की तथा खिलाने-पिलाने आदि सब बातें बिल्कुल तय करके वृन्दावन की माँ तीसरे पहर घर वापस आ गई।

चण्डीमण्डप के मन्दिर में उस वक्त सभी लड़के खड़े-खड़े पहाड़ा याद कर रहे थे और एक ओर खड़े वृन्दावन सुन रहे थे। बैलगाड़ी के रुकते ही उनका पुत्र चरण उतर कर शोर मचाता हुआ वृन्दावन के पास आ पहुँचा। अपनी दीदी के साथ वह भी अपनी मामी पसन्द करने गया था। उसे गोद में लेकर वृन्दावन गाड़ी के पास आकर खड़े हो गये। माँ गाड़ी पर से उतर रही थी। उनका प्रसन्न मुंह देखकर कहा—'क्यों माँ, शुभ दिन कब है ?'

'बस इस महीने के आखिर में अब अधिक दिन नहीं हैं। तुम जरा भीतर चलो, बहुत-सी बातें करनी हैं।' यह कह कर हँसती हुई वे भीतर चली गई।

मारे खुशी के उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे कि अब उनके घर बहू आयेगी। इसके अलावा उस दिन कुसुम को घर-गृहस्थी के कामों में बहुत योग्य देखकर वे उसे चाहने लगी थीं। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मैं सुख से रह सकूँगी, अपने एक मात्र पुत्र को देख सकूंगी और घर-गृहस्थी का भार बहू पर छोड़ कर आनन्द से यात्रा करने के लिये बाहर जा सकूँगी। इसी वजह से सब काम अब उनके लिये सहज हो गये थे। इसलिये गोकुल की विधवा औरत का प्रस्ताव मानकर ब्याह का सारा खर्च अपने ऊपर लेकर वे बात बिल्कुल पक्की कर आईं थीं।

उस समय तक उन्होंने खाना नहीं खाया था। वृन्दावन को मालूम था कि माँ कहीं वाहर जाकर खाना खाने के लिये जल्दी राजी नहीं होती हैं। पाठशाला के लड़कों को छुट्टी देकर उन्होंने अन्दर जाकर देखा कि माँ रसोई का कुछ इन्तजाम न कर एक ओर चुपचाप वैठी हैं। वृन्दावन ने कहा—'भूखे पेट सोचने से सब गड़बड़ हो जाता है। दूसरों की फिक्र वाद में करना, पहले रसोई की फिक्र करो।'

माँ ने कहा—'रसोई शाम को बनेगी। मैं मजाक नहीं कर रही हूं बेटा! अब समय नहीं रह गया है। उस पागल के पास न तो रुपया है और न आदमी ही। सब कुछ हमें ही करना पड़ेगा। लड़की की माँ तो वड़ी कड़ी लगती थी। कोई बात जल्दी मानती ही नहीं थी। किन्तु मैं भी तो छोड़ने वाली नहीं थी। अरे, लो यह भी आ गया। हजार साल जियो वेटा, अभी तुम्हारी ही वात चल रही थी। आओ वैठो, अचानक कहाँ से टपक पड़े ?'

सचमुच एक गाँव से दूसरे गाँव में किसी के घर जाने का वह समय नहीं था।

कमरे में पहुँचते ही इस तरह का आदर देखकर कुञ्जनाथ पहले कुछ सिटपिटाया और कुछ अप्रतिभ होकर प्रणाम करके वैठ गया।

मजाक करते हुए वृन्दावन ने कहा—'क्यों कुञ्ज दादा, तुम्हें कैसे मालूम हो गया ? रात भर भी चुप नहीं रह सके ? कल तड़के आकर ही सुन जाते तो क्या बिगड़ जाता ?'

वृन्दावन की माँ भी मुस्कराने लगीं। परन्तु कुंज ने उधर ध्यान नहीं दिया। आँखें चढ़ा कर वोला—'अरे वच्चा, यह वहिन है या कोई दरोगा!'

मुँह फेर कर वृन्दावन ने हँसी छिपाई। उसकी माँ ने हँसी सम्भाल कर कहा—'मालूम होता है, वहू ने कुछ कहला भेजा है!'

कुञ्ज ने इसका कुछ जवाव न देकर गम्भीर स्वर में कहा—'माँ, तुमने भी कैसी गलती की। अगर, कुसुम की नजर न पड़कर किसी और की नजर पड़ जाती तो वताओ क्या होता ?'

४

कुञ्जनाथ की शादी की लेन-देन की तथा खिलाने-पिलाने आदि सब बातें बिल्कुल तय करके वृन्दावन की माँ तीसरे पहर घर वापस आ गई।

चण्डीमण्डप के मन्दिर में उस वक्त सभी लड़के खड़े-खड़े पहाड़ा याद कर रहे थे और एक ओर खड़े वृन्दावन सुन रहे थे। बैलगाड़ी के रुकते ही उनका पुत्र चरण उतर कर शोर मचाता हुआ वृन्दावन के पास आ पहुँचा। अपनी दीदी के साथ वह भी अपनी मामी पसन्द करने गया था। उसे गोद में लेकर वृन्दावन गाड़ी के पास आकर खड़े हो गये। माँ गाड़ी पर से उतर रही थी। उनका प्रसन्न मुंह देखकर कहा—'क्यों माँ, शुभ दिन कब है?'

'बस इस महीने के आखिर में अब अधिक दिन नहीं हैं। तुम जरा भीतर चलो, बहुत-सी बातें करनी हैं।' यह कह कर हँसती हुई वे भीतर चली गई।

मारे खुशी के उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे कि अब उनके घर बहू आयेगी। इसके अलावा उस दिन कुसुम को घर-गृहस्थी के कामों में बहुत योग्य देखकर वे उसे चाहने लगी थीं। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मैं सुख से रह सकूँगी, अपने एक मात्र पुत्र को देख सकूंगी और घर-गृहस्थी का भार बहू पर छोड़ कर आनन्द से यात्रा करने के लिये बाहर जा सकूँगी। इसी वजह से सब काम अब उनके लिये सहज हो गये थे। इसलिये गोकुल की विधवा औरत का प्रस्ताव मानकर ब्याह का सारा खर्च अपने ऊपर लेकर वे बात बिल्कुल पक्की कर आईं थीं।

उस समय तक उन्होंने खाना नहीं खाया था । वृन्दावन को मालूम था कि माँ कहीं वाहर जाकर खाना खाने के लिये जल्दी राजी नहीं होती हैं। पाठशाला के लड़कों को छुट्टी देकर उन्होंने अन्दर जाकर देखा कि माँ रसोई का कुछ इन्तजाम न कर एक ओर चुपचाप वैठी हैं। वृन्दावन ने कहा—'भूखे पेट सोचने से सव गड़बड़ हो जाता है। दूसरों की फिक्र बाद में करना, पहले रसोई की फिक्र करो।'

माँ ने कहा—'रसोई शाम को वनेगी। मैं मजाक नहीं कर रही हूं बेटा! अब समय नहीं रह गया है। उस पागल के पास न तो रुपया है और न आदमी ही। सब कुछ हमें ही करना पड़ेगा। लड़की की माँ तो बड़ी कड़ी लगती थी। कोई वात जल्दी मानती ही नहीं थी। किन्तु मैं भी तो छोड़ने वाली नहीं थी। अरे, लो यह भी आ गया। हजार साल जियो वेटा, अभी तुम्हारी ही वात चल रही थी। आओ वैठो, अचानक कहाँ से टपक पड़े ?'

सचमुच एक गाँव से दूसरे गाँव में किसी के घर जाने का वह समय नहीं था।

कमरे में पहुँचते ही इस तरह का आदर देखकर कुञ्जनाथ पहले कुछ सिटपिटाया और कुछ अप्रतिभ होकर प्रणाम करके बैठ गया।

मजाक करते हुए वृन्दावन ने कहा—'क्यों कुञ्ज दादा, तुम्हें कैसे मालूम हो गया? रात भर भी चुप नहीं रह सके? कल तड़के आकर ही सुन जाते तो क्या बिगड़ जाता?'

वृन्दावन की माँ भी मुस्कराने लगीं। परन्तु कुंज ने उधर ध्यान नहीं दिया। आँखें चढ़ा कर बोला—'अरे बच्चा, यह वहिन है या कोई दरोगा!'

मुँह फेर कर वृन्दावन ने हँसी छिपाई। उसकी माँ ने हँसी सम्भाल कर कहा—'मालूम होता है, बहू ने कुछ कहला भेजा है!'

कुञ्ज ने इसका कुछ जवाब न देकर गम्भीर स्वर में कहा—'माँ, तुमने भी कैसी गलती की। अगर, कुसुम की नजर किसी और की नजर पड़ जाती तो वताओ क्या होता?'

कुञ्जनाथ की शादी की लेन-देन की तथा खिलाने-पिलाने आदि सब बातें बिल्कुल तय करके वृन्दावन की माँ तीसरे पहर घर वापस आ गई।

चण्डीमण्डप के मन्दिर में उस वक्त सभी लड़के खड़े-खड़े पहाड़ा याद कर रहे थे और एक ओर खड़े वृन्दावन सुन रहे थे। बैलगाड़ी के रुकते ही उनका पुत्र चरण उतर कर शोर मचाता हुआ वृन्दावन के पास आ पहुँचा। अपनी दीदी के साथ वह भी अपनी मामी पसन्द करने गया था। उसे गोद में लेकर वृन्दावन गाड़ी के पास आकर खड़े हो गये। माँ गाड़ी पर से उतर रही थी। उनका प्रसन्न मुंह देखकर कहा—'क्यों माँ, शुभ दिन कब है?'

'बस इस महीने के आखिर में अब अधिक दिन नहीं हैं। तुम जरा भीतर चलो, बहुत-सी बातें करनी हैं।' यह कह कर हँसती हुई वे भीतर चली गई।

मारे खुशी के उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे कि अब उनके घर बहू आयेगी। इसके अलावा उस दिन कुसुम को घर-गृहस्थी के कामों में बहुत योग्य देखकर वे उसे चाहने लगी थीं। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मैं सुख से रह सकूँगी, अपने एक मात्र पुत्र को देख सकूंगी और घर-गृहस्थी का भार बहू पर छोड़ कर आनन्द से यात्रा करने के लिये बाहर जा सकूँगी। इसी वजह से सब काम अब उनके लिये सहज हो गये थे। इसलिये गोकुल की विधवा औरत का प्रस्ताव मानकर ब्याह का सारा खर्च अपने ऊपर लेकर वे बात बिल्कुल पक्की कर आईं थीं।

उस समय तक उन्होंने खाना नहीं खाया था। वृन्दावन को मालूम था कि माँ कहीं वाहर जाकर खाना खाने के लिये जल्दी राजी नहीं होती हैं। पाठशाला के लड़कों को छुट्टी देकर उन्होंने अन्दर जाकर देखा कि माँ रसोई का कुछ इन्तजाम न कर एक ओर चुपचाप वैठी हैं। वृन्दावन ने कहा—'भूखे पेट सोचने से सव गड़वड़ हो जाता है। दूसरों की फिक्र बाद में करना, पहले रसोई की फिक्र करो।'

माँ ने कहा—'रसोई शाम को वनेगी। मैं मजाक नहीं कर रही हूं बेटा! अव समय नहीं रह गया है। उस पागल के पास न तो रुपया है और न आदमी हीं। सव कुछ हमें ही करना पड़ेगा। लड़की की माँ तो वड़ी कड़ी लगती थी। कोई वात जल्दी मानती ही नहीं थी। किन्तु मैं भी तो छोड़ने वाली नहीं थी। अरे, लो यह भी आ गया। हजार साल जियो बेटा, अभी तुम्हारी ही वात चल रही थी। आओ वैठो, अचानक कहाँ से टपक पड़े?'

सचमुच एक गाँव से दूसरे गाँव में किसी के घर जाने का वह समय नहीं था।

कमरे में पहुँचते ही इस तरह का आदर देखकर कुञ्जनाथ पहले कुछ सिटपिटाया और कुछ अप्रतिभ होकर प्रणाम करके बैठ गया।

मजाक करते हुए वृन्दावन ने कहा—'क्यों कुञ्ज दादा, तुम्हें कैसे मालूम हो गया? रात भर भी चुप नहीं रह सके? कल तड़के आकर ही सुन जाते तो क्या बिगड़ जाता?'

वृन्दावन की माँ भी मुस्कराने लगीं। परन्तु कुंज ने उधर ध्यान नहीं दिया। आँखें चढ़ा कर वोला—'अरे वच्चा, यह वहिन है या कोई दरोगा!'

मुंह फेर कर वृन्दावन ने हँसी छिपाई। उसकी माँ ने हँसी सम्भाल कर कहा—'मालूम होता है, वह ने कुछ कहला भेजा है!'

कुञ्ज ने इसका कुछ जवाव न देकर गम्भीर स्वर में कहा—'माँ, तुमने भी कैसी गलती की। अगर, कुसुम की नजर न पड़कर किसी और की नजर पड़ जाती तो वताओ क्या होता?'

कुञ्जनाथ की शादी की लेन-देन की तथा खिलाने-पिलाने आदि सब बातें बिल्कुल तय करके वृन्दावन की माँ तीसरे पहर घर वापस आ गई।

चण्डीमण्डप के मन्दिर में उस वक्त सभी लड़के खड़े-खड़े पहाड़ा याद कर रहे थे और एक ओर खड़े वृन्दावन सुन रहे थे। बैलगाड़ी के रुकते ही उनका पुत्र चरण उतर कर शोर मचाता हुआ वृन्दावन के पास आ पहुँचा। अपनी दीदी के साथ वह भी अपनी मामी पसन्द करने गया था। उसे गोद में लेकर वृन्दावन गाड़ी के पास आकर खड़े हो गये। माँ गाड़ी पर से उतर रही थी। उनका प्रसन्न मुंह देखकर कहा—'क्यों माँ, शुभ दिन कब है?'

'बस इस महीने के आखिर में अब अधिक दिन नहीं हैं। तुम जरा भीतर चलो, बहुत-सी बातें करनी हैं।' यह कह कर हँसती हुई वे भीतर चली गई।

मारे खुशी के उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे कि अब उनके घर बहू आयेगी। इसके अलावा उस दिन कुसुम को घर-गृहस्थी के कामों में बहुत योग्य देखकर वें उसे चाहने लगी थीं। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब मैं सुख से रह सकूँगी, अपने एक मात्र पुत्र को देख सकूंगी और घर-गृहस्थी का भार बहू पर छोड़ कर आनन्द से यात्रा करने के लिये बाहर जा सकूँगी। इसी वजह से सब काम अब उनके लिये सहज हो गये थे। इसलिये गोकुल की विधवा औरत का प्रस्ताव मानकर ब्याह का सारा खर्च अपने ऊपर लेकर वे बात बिल्कुल पक्की कर आईं थीं।

यह कह कर वृन्दावन ने कुँज से कहा–'चलो भाई, हम बाहर चल कर बैठें।' और हाथ पकड़ कर वे उसे खींचते हुए बाहर चले गये।

कुँज सीधा आदमी था। इसी से मारे खुशी के बेवक्त ही इतना रास्ता तय कर वह आया था। आज दोपहर के भोजन के बाद कुसुम ने जब उदास मुंह से कड़ों की वह जोड़ी हाथ में लेकर कुछ शुष्क और मधुर स्वर में कहा–'भूल से यह कड़ा कल वे छोड़ गये हैं, जाकर तुम्हें दे आना होगा। उस वक्त मारे खुशी के अपनी बहिन के उदास मुंह की ओर देखने का उसे मौका ही नहीं मिला।'

दाव पेंच वह नहीं जानता था। बहिन भूठ बोल रही है या कोई किसी को इतनी मूल्यवान चीज नहीं दे सकता या कोई दे भी तो दूसरा उसे लेता नहीं, लौटा देता है, यह असम्भव बातें उसके दिमाग में नहीं घुसती थीं। इसलिये रास्ते भर वह यही सब सोचता रहा कि अपनी खोई चीज अचानक पाकर वे कितने खुश होंगे और हमें कितना आशीर्वाद देंगे।

परन्तु वैसा तो कुछ भी नहीं हुआ। और जो हुआ, वह अच्छा हुआ या बुरा, यह भी वह नहीं समझ सका। इतना बड़ा काम कर देने पर भी वृन्दावन की माँ के मुंह से कोई अच्छी बात या आशीर्वाद न सुन सकने के कारण वह बहुत उदास हुआ और धीरे २ उसे कुछ शर्म भी मालूम होने लगी कि उनके सामने से वृन्दावन मुझे जबर्दस्ती खींच लाये हैं। लज्जित और दुखित होकर वह चुपचाप बैठ गया। वृन्दावन ने भी उसके पास बैठ कर कोई बातचीत नहीं की। उसकी हालत भी उस समय बातचीत करने लायक नहीं थी। अपमान की ज्वाला में उनका हृदय दग्ध हो रहा था और वह अपमान उनका नहीं बल्कि उनकी मां का था।

अपनी भलाई-बुराई या मान-अपमान की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। मृत्यु की यातना अन्य यातनाओं को दबा कर जैसे अकेली ही सब कुछ बन जाती है, ठीक उसी तरह माता के अपमानित और

मतलब न समझ कर माँ कुछ घबराई-सी देखती रही।'

वृन्दावन ने पूछा—'कुंज दादा बताओ तो सही कि हुआ क्या?

तुरन्त ही कह कर कुंज अपने आपको हलका नहीं करना चाहता था। इसलिए वृन्दावन के सवाल पर भी कुछ ध्यान न देकर उसने माँ से कहा—'पहले यह बताओ कि क्या खिलाओगी तब बतलाऊँगा।'

माँ ने हंस कर कहा—'ये तो बड़ी अच्छी बात है, बेटा! यह घर तुम्हारा ही है। बोलो, क्या खाओगे?'

कुंज ने कहा—'अच्छा, यह भी देखा जायगा। पहले यह तो बतलाओ कि तुम्हारा क्या खो गया है?'

वृन्दावन की माँ को फ़िक्र हुई। कुछ रुक कर उन्होंने संदिग्ध स्वर में कहा—'मैंने तो कोई चीज नहीं खोई।'

कुंज ठट्ठा कर हंस पड़ा। अपने दुपट्टे में से एक जोड़ा सोने का कड़ा निकाल कर उसने कहा—'तो ये तुम्हारे कड़े नहीं हैं?'

यह कह कर कुंज मारे खुशी के अपने आप ही हंसने लगा।

ये वे ही कड़े थे जिन्हें कल ठीक इसी वेला वृन्दावन की माँ ने सस्नेह अपनी बहू के हाथों में पहना कर आशीर्वाद दिया था। और आज वही कड़े और आशीर्वाद अपने नासमझ भाई द्वारा कुसुम ने भिजवा दिये थे।

पल-भर इधर देख कर वृन्दावन ने जब अपनी माँ की ओर नजर फेरी तो कुछ डर गये। उनके चेहरे पर एक कतरा भी खून नहीं रह गया। तीसरे पहर के धूमिल प्रकाश में वह किसी मुर्दे के चेहरे जैसा पीला नजर आ रहा था। वृन्दावन पर उस समय क्या गुजर रही थी यह भगवान ही जानता था। किन्तु, कोशिश करके तुरन्त ही उन्होंने अपने आप को सम्भाल लिया और माँ के कुछ और नजदीक सरक कर अत्यन्त सहज शान्त भाव से कहा—'यह हमारा सौभाग्य है माँ, कि भगवान ने हमारी चीज हमें लौटा दी। यह तुम्हारे हाथ के कड़े हैं माँ,! उसकी क्या बिसात जो इसे पहन सके।'

५

जिस तरह कल एक दिन के मेल-मिलाप से कुसुम ने अपने पति और सास को पहचान लिया था, उसी तरह उन लोगों ने भी उसे पहचान लिया था। इस बारे में उसे जरा भी सन्देह नहीं था।

जो पहचानना जानते हैं, उनके पास इस प्रकार अपने आपको उलझा कर बल्कि अनजान में ही उसने अपने आपको एक दुर्दमनीय स्नेह के बंधन में बाँध डाला था।

स्वयं ही उस बंधन को तोड़ कर कुसुम ने कड़े की जोड़ी लौटाने को दी, किन्तु बेचारा कुञ्ज जब उसे लेकर चल दिया तो थोड़ी देर के लिये उसने काफी तीव्र वेदना का अनुभव किया। कोठरी में जाकर वह रोने लगी। उसकी आँखों के सामने यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि उसके इस निष्ठुर व्यवहार से उन्हें कितनी आकस्मिक, अप्रत्याशित और मर्मान्तक पीड़ा होगी और मेरे बारे में वह कैसी धारणा बना लेंगे।

शाम कब की बीत चुकी थी। कुँज लौट आया। चारों ओर अँधेरा देखकर अपनी बहिन की कोठरी के सामने जाकर उसने पूछा—'कुसुम, चिराग नहीं जलाया ?'

कुसुम अभी तक चुपचाप जमीन पर बैठी थी। घबरा कर और कुछ लज्जित होकर वह खड़ी हुई और बोली—'अभी जलाये देती हूं दादा, तुम आये कब ?'

'चला ही आ रहा हूं'—कह कर कुञ्जनाथ हुक्का और चिलम खोज तम्बाकू चढ़ाने लगा।

चिराग जलाने में कुछ देर होगई, आकर देखा कि तम्बाकू चढ़ा कर कुंजनाथ चला गया है।

रोज की तरह आज भी कुसुम अपने भाई को खाना परोस कर दूर बैठ गई। गम्भीर होकर आज वह भोजन करने लगा। वह कुछ भी नहीं बोला। जो बात करते कभी नहीं थकता, उसे अचानक मौन देखकर कुसुम को आशङ्का हुई।

निःसन्देह कोई अप्रीतिकर घटना हुई है, परन्तु वह कैसी और कहाँ तक हुई है, यह जानने के लिये वह छटपटाने लगी। वह सोचने लगी कि भइया का उन लोगों ने बहुत अपमान किया है, क्योंकि वह अच्छी तरह से जानती थी कि उसका भाई छोटा-मोटा अपमान समझ ही नहीं पाता और अगर समझ भी ले तो इतनी देर तक उसे मन में नहीं रखता है।

खाना खाकर कुंज जब जाने लगा तो कुसुम से नहीं रहा गया। मधुर स्वर से उसने पूछा—'दादा, किसके हाथ में वह कड़े दिये ?'

कुंज ने विस्मित होकर कहा—'माँ के हाथ में और किसके ?'

'क्या कहा उन्होंने ?'

'कुछ भी नहीं ?' कह कर कुंज बाहर चला गया।

कुंज जब दूसरे दिन फेरी के लिये बाहर जाने लगा तो खुद ही कुसुम को बुला कर कहा—'कुसुम, तुम्हारी सास को न मालूम क्या हो गया है। ऐसी चीज उनके हाथ में दे आया किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।' बल्कि वृन्दावन दास को भला कहना होगा, जो प्रसन्न होकर कहने लगे—'माँ, किसकी बिसात है, जो तुम्हारे कड़े पहन सके। हमारा भाग्य है माँ, जो भगवान ने हमारी चीज हमें वापस करके, हमें सावधान कर दिया'······'ऐ कुसुम, यह क्या ?'

कुसुम का गोरा चेहरा एकदम पीला पड़ गया। जोर से सिर हिला कर उसने कहा–'नहीं, कुछ नहीं।···'यह बात खुद उन्होंने कही ?'

कुंजनाथ—'हाँ, माँ तो कुछ बोली ही नहीं। इसके अलावा सवेरे

से ही वे न मालूम कहाँ गई थीं, तब तक उन्होंने नहाया-खाया भी नहीं था। मेरी ओर वे इस प्रकार देखने लगीं जैसे वे समझ ही न पाई हों कि उन्हें मैंने क्या दिया और क्या कहा ?'

यह कह कर कुँज अपने आप ही गर्दन हिला कर माथे पर दौरा लेकर बाहर निकल गया।

तीन-चार दिन बीत गये। खाना अच्छा नहीं बना था, इसलिये कल और परसों कुञ्ज मुंह फुलाये रहा। आज साफ-साफ शिकायत कर देने से भाई-बहिन में झगड़ा हो गया।

थाली फेंक कर कुञ्ज उठ खड़ा हुआ और कहा—'कभी यह जल गया, कभी वह खराब हो गया, आजकल तुम्हारा मन कहाँ रहता है, कुसुम ?'

कुसुम ने भी गुस्सा होकर जवाब दिया—'किसी की खरीदी हुई, बाँदी मैं नहीं हूं। मुझसे खाना नहीं बनेगा। जो अच्छा खाना बनावे, उसे जाकर ले आओ।'

कुञ्ज को तेज भूख लगी थी, वह डरा नहीं, हाथ मटका कर कहा—'पहले तू यहाँ से चली जा, उसके बाद देखना कि मैं लाता हूं या नहीं।' यह कह कर दौरा लेकर खुद ही वह जल्दी से चल दिया।

उस दिन से ही जी-भर कर रोने के लिये कुसुम व्याकुल हो रही थी। ऐसा अच्छा मौका उसने हाथ से नहीं निकलने दिया।

भाई की परोसी हुई थाली पड़ी रही। सदर दरवाजा वैसे ही खुला रहा। आँचल बिछा कर रसोईघर की चौखट पर वह इस तरह रोने लगी मानो कोई मर गया हो।

उस समय लगभग दस बज रहे थे। रोते-रोते वह थक कर सो गई थी कि अचानक चौंक कर आँखें खोलते ही उसने देखा कि वृन्दावन आँगन में खड़े होकर पुकार रहे है—'कुँज दादा, कुँज दादा।' उनकी उङ्गली पकड़े हुए पाँच-छः साल का एक स्वस्थ और सुन्दर बालक भी था। घबराकर कुसुम ने घूंघट खींच लिया और चटपट किवाड़ की

ओट में खड़ी हो गई। सब कुछ भूल कर किवाड़ की ओट में से वह उस वक्त उस स्वस्थ बालक को ही देखने लगी।

देखते ही पहिचान लिया कि वह मेरे पति की ही एक मात्र संतान है। सहसा उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसके दोनों हाथ, हजार हाथ बनकर उसे छीन लेने के लिये जैसे उसका वक्ष-पंजर फाड़ कर आगे बढ़ने लगे। फिर भी न तो वह उसे बुला ही सकी और न एक कदम आगे ही बढ़ सकी। प्रस्तर मूर्ति की तरह टकटकी बाँधे वह उस बच्चे की ओर देखती रह गई। किसी की भी आहट न पाकर वृन्दावन को आश्चर्य हुआ।

सवेरे ही किसी काम से वे इधर आये थे और अब घर लौट रहे थे। दरवाजा खुला देखकर सोचा कि कुञ्ज घर में होंगे इसलिये गाड़ी से उतर कर अन्दर चले आये। कुञ्ज से उन्हें कुछ आवश्यक काम था। बैलगाड़ी देखकर उनका पुत्र चरण भी सवेरे ही उस पर चढ़ गया था, इसलिये वह भी उनके साथ था।

वृन्दावन ने फिर आवाज लगाई—'घर में क्या कोई नहीं है?'

फिर भी कोई जबाव नहीं मिला।

चरण ने कहा—'बाबूजी, बड़ी प्यास लगी है, पानी!'

वृन्दावन ने बिगड़ कर धमकाते हुए कहा—'नहीं, प्यास नहीं लगी है, नदी पर पीना।'

बिचारा लड़का चुप रह गया।

लज्जा के आवेश को दबा कर कुसुम उस दिन स्वच्छन्दता से वृन्दावन के सामने आ गई थी और बहुत ही सहज ढङ्ग से आवश्यक बातचीत भी कर पाई थी, किन्तु आज मारे लाज के वह बेकाबू होने लगी।

चरण अगर पानी न माँगे होता तो शायद, किसी तरह भी वह बाहर नहीं निकल पाती। पहले उसने कुछ आगा-पीछा किया किन्तु बाद में एक आसन लाकर बरामदे में बिछा दिया। नजदीक जाकर चरण को गोद में लेकर अन्दर चली गई।

वह इशारा तो वृन्दावन की समझ में आ गया, किन्तु यह नहीं समझ सके कि इस तरह चुपचाप वह बिलकुल अपरचित की गोद में चला कैसे गया ? पिता अपने बेटे की आदत से भली भाँति अवगत थे।

इधर चरण भौंचक-सा देखता रह गया। एक तो उसके पिता ने उसे घुड़क दिया और दूसरे एक बिल्कुल अनजानी जगह में कोई कहीं से आकर अचानक उसे इस तरह उठा कर ले गया जैसा कभी किसी ने नहीं किया था।

भीतर ले जाकर कुसुम ने चरण को बताशे दिये। कुछ देर तक वह उसे गौर से देखती रही और फिर अचानक उसे जोर से छाती से चिपटा कर रोने लगी।

चरण अपने आपको जब कठिन बाहुपाश से छुड़ाने लगा तो आँसू पोंछ कर कुसुम ने कहा—'ये क्या बेटा, मैं तो तुम्हारी माँ हूं।'

हमेशा से कुसुम बच्चों को प्यार करती थी। अगर कोई बालक उसे मिल जाता तो वह उसे जल्दी छोड़ती ही नहीं थी। किन्तु, इतनी प्रचंड लालसा उसके हृदय में कभी पैदा नहीं हुई थी। उसकी छाती जैसे टुकड़े २ होकर गिरने लगी। यह सुन्दर स्वस्थ और सबल बालक तो मेरा ही हो सकता है, किन्तु हुआ क्यों नहीं ? किसने यह बाधा डाली ? माँ-बेटे को इस तरह अलग करने का संसार में किसे अधिकार है ? चरण को जितना ही वह अपनी छाती पर अनुभव करने लगी, उतना ही उसका वंचित और तृषित मातृहृदय हर तरह की सान्त्वना से विलग होने लगा। उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसका धन किसी ने बल और अन्याय से छीन लिया है।

परन्तु चरण को यह असह्य हो उठा था। अगर, वह जाने होता तो नदी पर जाकर ही शायद, पानी पीये होता। इस स्नेह-पीड़न की अपेक्षा प्यास उसे कहीं अधिक असह्य हुई होती। उसने कहा—'छोड़ दो।'

ओट में खड़ी हो गई। सब कुछ भूल कर किवाड़ की ओट में से वह उस वक्त उस स्वस्थ बालक को ही देखने लगी।

देखते ही पहिचान लिया कि वह मेरे पति की ही एक मात्र संतान है। सहसा उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसके दोनों हाथ, हजार हाथ बनकर उसे छीन लेने के लिये जैसे उसका वक्ष-पंजर फाड़ कर आगे बढ़ने लगे। फिर भी न तो वह उसे बुला ही सकी और न एक कदम आगे ही बढ़ सकी। प्रस्तर मूर्ति की तरह टकटकी बाँधे वह उस बच्चे की ओर देखती रह गई। किसी की भी आहट न पाकर वृन्दावन को आश्चर्य हुआ।

सवेरे ही किसी काम से वे इधर आये थे और अब घर लौट रहे थे। दरवाजा खुला देखकर सोचा कि कुञ्ज घर में होंगे इसलिये गाड़ी से उतर कर अन्दर चले आये। कुञ्ज से उन्हें कुछ आवश्यक काम था। बैलगाड़ी देखकर उनका पुत्र चरण भी सवेरे ही उस पर चढ़ गया था, इसलिये वह भी उनके साथ था।

वृन्दावन ने फिर आवाज लगाई—'घर में क्या कोई नहीं है?'

फिर भी कोई जवाब नहीं मिला।

चरण ने कहा—'बाबूजी, बड़ी प्यास लगी है, पानी!'

वृन्दावन ने बिगड़ कर धमकाते हुए कहा—'नहीं, प्यास नहीं लगी है, नदी पर पीना।'

बिचारा लड़का चुप रह गया।

लज्जा के आवेश को दबा कर कुसुम उस दिन स्वच्छन्दता से वृन्दावन के सामने आ गई थी और बहुत ही सहज ढङ्ग से आवश्यक बातचीत भी कर पाई थी, किन्तु आज मारे लाज के वह बेकाबू होने लगी।

चरण अगर पानी न माँगे होता तो शायद, किसी तरह भी वह बाहर नहीं निकल पाती। पहले उसने कुछ आगा-पीछा किया किन्तु बाद में एक आसन लाकर बरामदे में बिछा दिया। नजदीक जाकर चरण को गोद में लेकर अन्दर चली गई।

वह इशारा तो वृन्दावन की समझ में आ गया, किन्तु यह नहीं समझ सके कि इस तरह चुपचाप वह बिलकुल अपरिचित की गोद में चला कैसे गया ? पिता अपने बेटे की आदत से भली भाँति अवगत थे।

इधर चरण भौंचक-सा देखता रह गया। एक तो उसके पिता ने उसे घुड़क दिया और दूसरे एक बिल्कुल अनजानी जगह में कोई कहीं से आकर अचानक उसे इस तरह उठा कर ले गया जैसा कभी किसी ने नहीं किया था।

भीतर ले जाकर कुसुम ने चरण को बताशे दिये। कुछ देर तक वह उसे गौर से देखती रही और फिर अचानक उसे जोर से छाती से चिपटा कर रोने लगी।

चरण अपने आपको जब कठिन बाहुपाश से छुड़ाने लगा तो आँसू पोंछ कर कुसुम ने कहा—'ये क्या बेटा, मैं तो तुम्हारी माँ हूं।'

हमेशा से कुसुम बच्चों को प्यार करती थी। अगर कोई बालक उसे मिल जाता तो वह उसे जल्दी छोड़ती ही नहीं थी। किन्तु, इतनी प्रचंड लालसा उसके हृदय में कभी पैदा नहीं हुई थी। उसकी छाती जैसे टुकड़े २ होकर गिरने लगी। यह सुन्दर स्वस्थ और सबल बालक तो मेरा ही हो सकता है, किन्तु हुआ क्यों नहीं ? किसने यह बाधा डाली ? माँ-बेटे को इस तरह अलग करने का संसार में किसे अधिकार है ? चरण को जितना ही वह अपनी छाती पर अनुभव करने लगी, उतना ही उसका वंचित और तृषित मातृहृदय हर तरह की सान्त्वना से विलग होने लगा। उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसका धन किसी ने बल और अन्याय से छीन लिया है।

परन्तु चरण को यह असह्य हो उठा था। अगर, वह जाने होता तो नदी पर जाकर ही शायद, पानी पीये होता। इस स्नेह-पीड़न की अपेक्षा प्यास उसे कहीं अधिक असह्य हुई होती। उसने कहा—'छोड़ दो।'

अपने दोनों हाथों में उसका मुंह लेकर कुसुम ने कहा—'माँ, कहो तो छोड़ूंगी।'

चरण ने सिर हला कर कहा—'नहीं।'

'तो नहीं छोड़ती।' कह कर कुसुम ने फिर जोर से उसे अपनी छाती पर लगा लिया। दबाकर उसे चूमा कि वह हाँपने लगा—'माँ, न कहोगे तो कभी नहीं छोड़ूँगी।'

रुआँसा होकर चरण ने कहा—'माँ!'

अब तो उसे छोड़ना कुसुम के लिये बिल्कुल असह्य हो गया। उसने उसे अपनी छाती पर दबा लिया और रोने लगी।

देर हो रही थी। बाहर से वृन्दावन ने कहा—'क्यों चरण, पानी पी चुके?'

तब चरण ने रोते हुए कहा—'ये तो छोड़ती ही नहीं।'

आँखें पोंछकर कुसुम ने बैठे हुए गले से कहा—'चरण आज मेरे पास रहेगा।'

वृन्दावन ने दरवाजे के नजदीक आकर कहा—'वह रह कैसे सकेगा? माँ बहुत घबरायेंगी। और उसने अभी तक खाना भी नहीं खाया है।'

कुसुम ने उसी तरह जवाब दिया—'नहीं, वह यहीं रहेगा। आज मेरी तबियत बहुत खराब हो रही है।'

वृन्दावन ने पूछा—'क्यों क्या हुआ?'

कुसुम ने कोई जवाब नहीं दिया।

कुछ देर बाद बोली—'गाड़ी लौटा दो, बहुत देर हो गई है। नदी जाकर मैं चरण को नहलाये लाती हूं।'

यह कह कर किसी उत्तर या प्रतिवाद की अपेक्षा किये बिना ही कुसुम गम्छा तथा तेल की कटोरी लेकर चरण को गोद में लिये नदी की ओर चल पड़ी।

घर के नजदीक ही छोटी-सी एक स्वच्छ नदी थी। उसे देखते ही चरण खुश हो गया। उसके गाँव में नदी नहीं है, बस एक छोटा सा कच्चा तालाव है। उसे कोई उस तालाब में उतरने नहीं देता था इसलिये ऐसा मौका उसे कभी नहीं मिला था। घाट पर बैठकर इतमीनान से उसने तेल मालिश की और फिर घुटने भर पानी में उछल पड़ा। कुछ देर तक उछल-कूद कर नहाकर कुसुम की गोद में चढ़कर जब वह घर लौटा तब माँ-बेटे में विलक्षण सद्भावना पैदा हो गई थी।

बच्चे को गोद में लिये हुए कुसुम सामने आई। उसका चेहरा खुला हुआ था, आँचल केवल ललाट छू रहा था। जाते वक्त उसने कहा था—'मेरी तबियत खराव हो रही है' किन्तु अब तो उसके चेहरे पर कष्ट का कोई आभास ही नहीं मिल रहा था। उसके होठों पर अधविकसित गुलाब-की-सी मुस्कहराट खेल रही थी। उसके व्यवहार में किसी तरह का संकोच या कुण्ठा छुआ भी नहीं था। अत्यन्त सहज भाव से उसने कहा—'अच्छा, अव तुम जाओ, नहा आओ।'

'उसके बाद?'

'भोजन होगा।'

'उसके बाद ?'

'खाना खाकर आराम करना होगा।'

'उसके बाद'

'मैं नहीं जानती। लो गम्छा देर मत करो।'

यह कह कर हंसते २ कुसुम ने गम्छा वृन्दावन के ऊपर फेंक दिया।

वृन्दावन ने गम्छा पकड़ लिया और मुंह फेर कर एक निःश्वास छोड़ कर कहा—'बल्कि, देर तुम्हीं मत करो। चरण को कुछ खिला-पिला दो, मुझे जाना ही होगा!'

'क्यों! गाड़ी लौट जाने पर मां खुद ही समझ जायेंगी।'

'ठीक इसीलिये गाड़ी नहीं लौटाई है, आगे पेड़ के नीचे वह खड़ी हैं।'

बात सुनकर कुसुम का हंसता हुआ चेहरा उदास हो गया। कुछ देर तक खड़ी रह कर सिर उठाकर उसने कहा—'तब तो माँ से बिना पूछे तुम्हारा यहाँ आना ठीक नहीं हुआ।'

कुसुम के इस छिपे अभिमान भरे स्वर को सुनकर वृन्दावन हंस पड़े किन्तु मजा किरकिरा ही रहा। इसके बाद सहज स्वर से कहा—'कुसुम, मेरा लालन-पालन इस ढङ्ग से हुआ है कि माँ की इजाजत के बिना इस घर में क्या इस गाँव में भी कदम नहीं रख सकता। किन्तु छोड़ो इन बातों को फिर से उठाने से कोई फायदा नहीं। जाओ, देर मत करो। लड़के को कुछ खिला पिला दो।' यह कहकर वृन्दावन फिर आसन पर बैठ गये।

बड़ी मुश्किल से आँसू रोककर लड़के को लेकर कुसुम सिर झुकाये चली गई।

घण्टे भर बाद बाप-बेटे गाड़ी में बैठकर जब घर की ओर चले तो रास्ते में चरण ने पूछा—'बाबा, माँ इतना रो क्यों रही थी?'

विस्मित होकर वृन्दावन ने पूछा—'क्यों रे, तुमसे यह किसः कह दिया कि यह तेरी माँ है?'

चरण ने जोर देते हुए कहा—'वह मेरी माँ तो है ही। क्या ह मेरी माँ नहीं है?'

इस बात का कुछ जवाब न देकर वृन्दावन ने पूछा—'तुम नी माँ के साथ रह सकते हो?'

चरण ने बहुत खुश होकर सिर हिलाते हुए कहा—'हाँ, रह ा हूं।'

'अच्छा', कह कर वृन्दावन मुँह फेरकर लेट गये और सूर्य की ों से जले हुये स्वच्छ आकाश की ओर देखने लगे।

दूसरे दिन तीसरे पहर की बात है। नदी से पानी लेने के

लिये जाते समय कुसुम अपने घर के अंदर दरवाजे की साँकल लगा रही थी, तभी बारह-तेरह साल के एक लड़के ने इधर-उधर देखकर नजदीक आकर पूछा—'कुञ्ज वैरागी का घर कौन-सा है ?'

कुसुम ने कहाँ—'क्यों, कहाँ से आये हो ?'

'वाड़ल से। पण्डित जी ने चिट्ठी दी है।'

यह कहकर अपने मैले दुपट्टे में से चिट्ठी निकाल उसने दिखलाई।

कुसुम की नसों का खून तेजी से चलने लगा। उसने देखा कि ऊपर उसी का नाम लिखा है। लड़के को बुलाकर भीतर ले गई और पूछा–'तुम पण्डित जी किसे कहते हो ? किसने दी तुम्हें यह चिट्ठी ?'

कुसुम से विस्मित होकर बालक ने कहा—'पण्डित जी नें।'

पाठशाला के बारे में कुसुम नहीं जानती थी, इसलिये वह कुछ समझ न सकी। उसने पूछा—'चरण के बाबा को तुम जानते हो ?'

'जानता हूं, वही तो पण्डित जी हैं।'

'तुम उनसे पढ़ते हो ?'

'मैं पढ़ता हूं और पाठशाला में और भी कई लड़के पढ़ते हैं।'

कुसुम को और भी उत्सुकता हुई और उसने कई बातें पूछ कर बहुत कुछ जान लिया। वह जान गई कि पण्डित जी के घर में ही पाठशाला खुली है। वहाँ लड़कों को फीस नहीं देनी पड़ती। पण्डित जी ही बालकों को स्लेट-पेन्सिल और पुस्तकें खरीद देते हैं। जिन गरीब छात्रों को दिन में पढ़ने का मौका नहीं मिलता, वे शाम को पढ़ने आते हैं और ठाकुर जी की आरती हो जाने पर प्रसाद लेकर हँसते-खेलते घर लौट जाते हैं। दो लड़के आयु में बड़े भी हैं जो अंग्रेजी पढ़ने आते हैं। यह सब बातें कुसुम ने पूछ लीं और लड़के को फ़ूल-बताशे देकर विदा कर दिया। इसके बाद चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगी।

कुसुम का सुख स्वप्न जैसे किसी ने तेज धक्का देकर तोड़

'ठीक इसीलिये गाड़ी नहीं लौटाई है, आगे पेड़ के नीचे वह खड़ी हैं।'

बात सुनकर कुसुम का हंसता हुआ चेहरा उदास हो गया। कुछ देर तक खड़ी रह कर सिर उठाकर उसने कहा—'तब तो माँ से बिना पूछे तुम्हारा यहाँ आना ठीक नहीं हुआ।'

कुसुम के इस छिपे अभिमान भरे स्वर को सुनकर वृन्दावन हंस पड़े किन्तु मजा किरकिरा ही रहा। इसके बाद सहज स्वर से कहा—'कुसुम. मेरा लालन-पालन इस ढङ्ग से हुआ है कि माँ की इजाजत के बिना इस घर में क्या इस गाँव में भी कदम नहीं रख सकता। किन्तु छोड़ो इन बातों को फिर से उठाने से कोई फायदा नहीं। जाओ, देर मत करो। लड़के को कुछ खिला पिला दो।' यह कहकर वृन्दावन फिर आसन पर बैठ गये।

बड़ी मुश्किल से आँसू रोककर लड़के को लेकर कुसुम सिर झुकाये चली गई।

घण्टे भर बाद बाप-बेटे गाड़ी में बैठकर जब घर की ओर चले तो रास्ते में चरण ने पूछा—'बाबा, माँ इतना रो क्यों रही थी?'

विस्मित होकर वृन्दावन ने पूछा—'क्यों रे, तुमसे यह किसने कह दिया कि यह तेरी माँ है?'

चरण ने जोर देते हुए कहा—'वह मेरी माँ तो है ही। क्या वह मेरी माँ नहीं है?'

इस बात का कुछ जवाब न देकर वृन्दावन ने पूछा—'तुम अपनी माँ के साथ रह सकते हो?'

चरण ने बहुत खुश होकर सिर हिलाते हुए कहा—'हाँ, रह सकता हूं।'

'अच्छा', कह कर वृन्दावन मुँह फेरकर लेट गये और सूर्य की किरणों से जले हुये स्वच्छ आकाश की ओर देखने लगे।

दूसरे दिन तीसरे पहर की बात है। नदी से पानी लेने के

लिये जाते समय कुसुम अपने घर के संदर दरवाजे की साँकल लगा रही थी, तभी बारह-तेरह साल के एक लड़के ने इधर-उधर देखकर नजदीक आकर पूछा—'कुञ्ज वैरागी का घर कौन-सा है ?'

कुसुम ने कहाँ—'क्यों, कहाँ से आये हो ?'

'बाड़ल से। पण्डित जी ने चिट्ठी दी है।'

यह कहकर अपने मैले दुपट्टे में से चिट्ठी निकाल उसने दिखलाई।

कुसुम की नसों का खून तेजी से चलने लगा। उसने देखा कि ऊपर उसी का नाम लिखा है। लड़के को बुलाकर भीतर ले गई और पूछा-'तुम पण्डित जी किसे कहते हो ? किसने दी तुम्हें यह चिट्ठी ?'

कुसुम से विस्मित होकर बालक ने कहा—'पण्डित जी नें।'

पाठशाला के बारे में कुसुम नहीं जानती थी, इसलिये वह कुछ समझ न सकी। उसने पूछा—'चरण के बाबा को तुम जानते हो ?'

'जानता हूं, वही तो पण्डित जी हैं।'

'तुम उनसे पढ़ते हो ?'

'मैं पढ़ता हूं और पाठशाला में और भी कई लड़के पढ़ते हैं।'

कुसुम को और भी उत्सुकता हुई और उसने कई बातें पूछ कर बहुत कुछ जान लिया। वह जान गई कि पण्डित जी के घर में ही पाठशाला खुली है। वहाँ लड़कों को फीस नहीं देनी पड़ती। पण्डित जी ही बालकों को स्लेट-पेन्सिल और पुस्तकें खरीद देते हैं। जिन गरीब छात्रों को दिन में पढ़ने का मौका नहीं मिलता, वे शाम को पढ़ने आते हैं और ठाकुर जी की आरती हो जाने पर प्रसाद लेकर हँसते-खेलते घर लौट जाते हैं। दो लड़के आयु में बड़े भी हैं जो अंग्रेजी पढ़ने आते हैं। यह सब बातें कुसुम ने पूछ लीं और लड़के को फूल-बताशे देकर विदा कर दिया। इसके बाद चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगी।

कुसुम का सुख स्वप्न जैसे किसी ने तेज धक्का देकर तोड़

दिया। चिट्ठी उसी को लिखी गई थी, किन्तु उसमें किसी तरह का सम्बोधन और स्नेह की बात नहीं थी, यहाँ तक कि आशीर्वाद भी नहीं था और उस पर भी यह पहली चिट्ठी थी! गो इसके पहले कभी किसी ने उसे कोई चिट्ठी लिखी नहीं थी किन्तु, अपनी सखी सहेलियों की अनेक चिट्ठियाँ वह देख चुकी थी। उन चिट्ठियों में और इनमें कितना अन्तर है! इसमें शुरू से आखिर तक काम की ही बातें हैं। खास बात है कुञ्जनाथ की शादी की। यही बात कहने वे कल आये थे। उन्होंने लिखा है कि माँ ने कुञ्जनाथ की शादी तय कर ली है और सारा खर्च भी वे अपने पास से ही देंगी। हर दृष्टिकोण से यह शादी हो जानी चाहिए क्योंकि इससे कुञ्जनाथ के और साथ-साथ खुद कुसुम के भी सांसारिक दुख दूर हो जायेंगे। यह संकेत प्रायः स्पष्ट रूप से उसमें किया गया है।

एक बार पढ़ चुकने पर उसने उसे दुबारा पढ़ने की कोशिश की किन्तु इस बार सब अक्षर जैसे उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। चिट्ठी बन्द कर किसी तरह वह कोठरी में जाकर पड़ी रही। अपने इतने बड़े सौभाग्य की सम्भावना से उसे तनिक भी प्रसन्नता नहीं हो सकेगी।

६

लगभग एक महीना हुआ, कुञ्जनाथ की शादी हो गई। तव से वृन्दावन फिर नहीं आये। शादी के दिन भी बुखार होने का बहाना करके वे नहीं आये। केवल चरण को लेकर उनकी माँ दिन भर के लिये आई थीं क्योंकि अपने गृहदेवता को छोड़कर वह किसी दूसरी जगह नहीं रह सकतीं। केवल चरण ही पाँच-छः दिन और वहाँ रहा। चाहे अपने मन लायक माँ पाने के कारण ही, चाहे नदी में नहाने का लालच हो परन्तु, लौटकर घर जाना वह नहीं चाहता था। बाद में जबर्दस्ती उसे घर ले जाना पड़ा। तब से कुसुम का जीना दूभर हो गया है।

शादी के पहले कुसुम को जिन बातों का डर था अब उन सभी बातों के अक्षरशः पूरे होने का उपक्रम दिखलाई देने लगा। अपने भाई को वह वहुत अच्छी तरह जानती थी। उसे मालूम था कि सास की राय से दादा यह कष्टपूर्ण गृहस्थी छोड़कर अपनी ससुराल में जा रहने के लिये व्यग्र होंगे। ठीक वही हुआ भी। जिस सिर पर सेहरा बाँधकर कुञ्ज अपनी शादी करने गया था, अब उसने उस पर दोष ढोना पसन्द नहीं किया। नालडांगे के लोग सुनकर क्या कहेंगे? शादी के समय चालाकी से वृन्दावन की माँ ने कुछ नकद रुपये दिये थे। उन्हीं रुपयों से कुछ सामान खरीदकर वाहर रास्ते पर एक छप्पर डालकर उसने मनिहारी की एक दुकान खोल दी। किन्तु, एक पैसे की भी बिक्री वहाँ नहीं हुई। महीने भर में तीन-चार बार वह नये कपड़े और नये

जूते पहनकर ससुराल हो आया। कुसुम से पहले वह वहुत डरता था किन्तु, अव नहीं। जव उससे कहा जाता कि घर में आज चावल दाल नहीं है तव या तो चुपचाप जाकर दुकान पर वैठ जाता या कहीं चल देता और दिन भर गायव रहता। चारों तरफ देखकर कुसुम वहुत घवराई। इकट्ठे दिये हुये उसके पास जो थोड़े-से रुपये थे वे भी खत्म हो चले। फिर भी कुञ्ज ने कुछ ध्यान नहीं दिया। अपनी नयी दूकान पर वैठा २ वह दिनभर तम्वाकू पीता और सोता रहता। दो-चार आदमी जव कभी आ जाते तो उन्हें वह ससुराल की बातें सुनाता और अपनी नई जगह-जायदाद की फहरिस्त वनाता।

उस दिन सुवह ही उठकर कुँज अपने नये वार्निशदार जूतों में तेल लगाकर उन्हें चमका रहा था। रसोई घर से वाहर निकल कर कुछ देर तक उसे देखती रहने के वाद कुसुम ने कहा—'मालूम होता है, आज फिर नलडाँगे जाओगे।'

'हूं' कहकर कुँज अपने काम में लग गया।

कुछ देर वाद कुसुम ने कहा—'दादा, अभी तो उसी दिन तुम वहाँ गये थे, जरा मेरे चरण को तो जाकर देख आओ। वहुत दिनों से उनका कुछ समाचार नहीं मिला। मेरा जी घवराता है।'

कुँज ने चिढ़कर कहा—'तुम्हारा जी तो सव वातों में घवराता है। वह अच्छी तरह है।'

कुसुम को गुस्सा आ गया किन्तु उसने सम्भलकर कहा—'अच्छा ही सही, किन्तु, एकवार देख तो आओ। ससुराल कल चले जाना।'

कुँज ने कुछ गरम होकर कहा—'कल जाने से कैसे काम चलेगा? वहाँ कोई पुरुष-मानस तो है नहीं। घर-द्वार, जगह-जमीन क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, यह सव वोझ तो मुझी पर है। मैं अकेला आदमी क्या-क्या देखूं, क्या २ सम्भालूं?'

गुस्सा होने पर भी भाई की वातचीत के ढङ्ग से कुसुम हंस पड़ी, उसने कहा—'नहीं दादा तुम सम्भाल लोगे। मैं तुम्हारे पैरों

पड़ती हूं, एक वार देख आओ। सचमुच ही मेरा जी न मालूम क्यों, उसके लिये आज वहुत घबरा रहा है।'

जूतों को हाथों से हटाकर कुँज ने अत्यन्त रूखेपन से कहा—'मैं नहीं जाता। मेरी शादी में वृन्दावन नहीं आये। क्या वे इतने बड़े आदमी हैं जो नहीं आ पाये ?'

कुँज की वातें धीरे २ कुसुम की वर्दाश्त के वाहर हुई जा रही थीं। तो भी उसने वहुत ही शान्त और सहज स्वर में कहा—'उस दिन उन्हें बुखार हो गया था।'

कुँजनाथ ने कहा 'नहीं। यह वात सुनकर नलडाँगे में वैठी मेरी सास ने उसी वक्त कहा था—'झूठ वात है, चालाकी है।' उन्हें धोखा देना आसान नहीं। मालूम है, बैठे २ वे देश भर का हाल वतला सकती हैं ? नमकहराम और कहते किसे हैं, इसे ही तो ? मैं उनक मुँह भी नहीं देखना चाहता।'

यह कहकर कुँज ने गम्भीर भाव से खड़े होकर जूता पहना।

कुसुम पर मानो वज्रपात हो गया। कुछ देर तक वह स्तब्ध खड़ी रही। फिर उसने धीरे-से कहा—'वे नमक हराम हैं ! तुमने उस दिन इन्हें खूब नमक खिलाई जिस दिन न्यौता देकर भाग निकले थे, क्यों ? दादा, सपने में भी मैंने यह नहीं सोचा था कि तुम ऐसे हो जाओगे।'

कुँज के पास इसका कोई जवाव नहीं था, इसलिये वह इस तरह खड़ा रहा जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं।

कुसुम ने फिर कहा—'जिसे तुम अपनी जायदाद कहते हो वह किसकी होती ? तुम्हारी शादी किसने कराई ?'

कुँज ने लौटकर जवाव दिया—'कौन किसकी शादी करा देता है ? माँ (सास) कहती हैं, जव फूल खिलने को आता है तो उसे कोई रोक नहीं सकता। शादी अपने आप हो जाती है।'

'अपने आप ?'

सामने जाकर बैठते हुए वृन्दावन ने कहा—'नहीं माँ, यह नहीं होगा। सोचने-विचारने का समय मैं तुम्हें नहीं दूंगा। यही तय करके आया हूं कि तुम्हारी आज्ञा लेकर ही कमरे से बाहर निकलूंगा।"

'सोचने-विचारने का समय क्यों नहीं दोगे ?'

'इसकी एक वजह है, माँ। सोच-विचार कर तुम जो कहोगी वह तुम्हारी अपनी बात होगी, मेरी माँ की आज्ञा नहीं। अच्छे बुरे की राय मैं नहीं चाहता, केवल आज्ञा चाहता हूं।'

सिर उठाकर थोड़ी देर तक देखती रहने के बाद माँ ने कहा—'परन्तु एक दिन जब तुम्हें अनुमति दी थी और तुम्हें मनाया था तब तो तुमने कुछ ध्यान नहीं दिया, वृन्दावन !'

'यह मुझे याद है। उसी पाप के फल से तो आज मैं चारों ओर से घिर गया हूं।' यह कहकर वृन्दावन ने सिर झुका लिया।

केवल मुझे सुख पहुँचाने की गरज से लड़के ने यह प्रस्ताव मुझ से किया है और इसे कार्यरूप में परिणित करने में उस पर क्या गुज-रेगी, यह निश्चित रूप से समझकर माँ की आँखों में आँसू भर आया। उन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया—'अभी सब्र करो, दो एक दिन बाद कहूंगी।'

वृन्दावन ने हठ करते हुए कहा—'जिस लिये तुम टाल रही हो, दो दिन बाद भी वह न होगा। अगर, तुम चाहो तो उसे क्षमा कर दो किन्तु, जिसने तुम्हारा अपमान किया है उसे मैं नहीं क्षमा कर सकता। अब मैं बर्दास्त नहीं कर पाता माँ, मुझे आज्ञा दो ताकि स्वस्थ होकर मैं जीता रहूं।'

माँ ने फिर सिर उठाकर देखा और कुछ देर तक सोचकर ठण्डी साँस लेकर कहा—'अच्छा जाओ, आज्ञा है।'

इस ठण्डी साँस का अर्थ वृन्दावन ने समझ लिया। किन्तु फिर उन्होंने कोई बात नहीं कही। पदधूलि माथे से लगाकर चुपचाप वे कमरे के बाहर आकर खड़े हो गये।

तभी पाठशाला के एक विद्यार्थी ने उसके हाथ में एक चिट्ठी देकर कहा—'पण्डित जी, यह आपकी चिट्ठी है।'

और उसके मुँह पर अपना मुँह रख कर बार बार यही सोचने लगी कि मैं अकेली नहीं हूं।

चरण नौकर के साथ आया था। खाना खाने के बाद रात को उसके सोने का इन्तजाम कुँज की नई दुकान में किया गया। बिस्तर पर लेटकर चरण को छाती से लगाकर कुसुम ने कितनी ही बातें पूछीं और आखिर में धीरे २ पूछा—'क्यों रे चरण, तुम्हारे बाबूजी क्या करते हैं ?'

चरण तुरन्त उठ खड़ा हुआ और अपनी कोट की पाकेट में से एक छोटी सी पोटली निकाल लाया। उसे कुसुम के हाथ पर रखकर कहा—'मैं भूल गया, माँ! यह तुम्हें देने के लिये बाबूजी ने कहा था।'

पोटली हाथ में लेते ही कुसुम समझ गई कि इसमें रुपये हैं।

चरण ने कहा—'बस, यही देकर बाबूजी लौट गये।'

कुसुम ने घबड़ाकर पूछा—'कहाँ से लौट गये रे ?'

चरण ने हाथ उठाकर कहा—'वहाँ, उस जगह से।'

'तो क्या वे नदी के इस पार तक आये थे ?'

चरण ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ।'

कुसुम ने फिर कुछ नहीं पूछा। अभिमान के कारण वह चुपचाप पड़ रही। उस दिन दोपहर को बिना पानी पीये जब वे चरण को लेकर चले गये तो कुसुम ने भी दुबारा सिफारिश नहीं की थी बल्कि कुछ खरी-खोटी ही सुना दी थी। तब से कभी भी वे दिखाई नहीं पड़े। पहले सैकड़ों बहानों से वे इधर से गुजरते थे। परन्तु, अब इधर आने का कोई सबब ही नहीं रहता, सबब न रहा हो किन्तु अन्तर्यामी ही जानते हैं कैसे बाट जोहते-जोहते वह अपना एक-एक दिन गुजारती है। राह से गुजरती किसी बैलगाड़ी की आवाज सुनते ही उसकी नसों का खून अजीब तेजी से दौड़ने लगता है और बड़ी उम्मीद से दरवाजे की आड़ में खड़ी होकर वह टकटकी लगाये देखती

कुचल कर वे क्यों नहीं जहाँ तबियत होती है वहाँ मुझे खींच ले जाते हैं ? मैं विरोध करने वाली कौन होती हूं ? और उस विरोध को स्वीकार करने का अधिकार उन्हें भी तो नहीं है, ।'

अचानक उसका शरीर काँप गया जिससे उससे चिपटकर सोये हुए चरण की निद्रा टूट गई। उसने कहा—'क्या है, माँ ?'

कुसुम ने उसे दामन से लगाकर धीरे से कहा—'बतला तो बेटा, तू किसे ज्यादा चाहता है, मुझे या बाबूजी को ?'

चरण ने तुरन्त जवाब दिया—'तुम्हें।'

'बड़े होकर अपनी माँ को खाना दोगे, चरण ?'

'हाँ, दूँगा।'

जब तुम्हारे बाबूजी मुझे निकाल देंगे तो अपनी माँ को अपने यहाँ जगह दोगे ?'

'हाँ, दूँगा।'

चरण यह तो नहीं समझता था कि किस हालत में माँ को क्या देना होगा किन्तु इतना समझता था कि किसी भी हालत में अपनी माँ के लिये उसे कुछ भी अदेय नहीं हो सकता।

कुसुम की आँखों से आँसू गिरने लगे। चरण के सो जाने के बाद आँखें पोंछकर उसकी ओर देखते हुये वह मन ही मन कहने लगी—'मुझे डर किस बात का! चाहे और कोई मुझे जगह दे या न दे परन्तु, मेरा लड़का है, वह तो देगा ही।'

दूसरे दिन सूर्योदय के थोड़ी ही देर बाद माँ-बेटे नदी से नहाकर लौटे तब उन्होंने देखा कि आँगन में खड़ी एक प्रौढ़ा स्त्री कुँजनाथ से अनेक तरह के सवाल पूछ रही है और यथा योग्य वे उसका जवाब दे रहे हैं। वह कुञ्जनाथ की सास थी। अपने दामाद का घर केवल उत्सुकता के कारण ही देखने वह नहीं आई थी बल्कि यह भी देखने आई थी कि अपनी एक-मात्र कन्या रत्न को किसी दिन यहाँ भोजन निरापद है या नहीं।

कुसुम को आते देखकर अचानक वह अवाक् होकर उसकी ओर देखती रह गई। यौवन-श्री उसके भीगे कपड़ों में नहीं समाती थी। शरीर का कंचन-सा रङ्ग उसकी गीली धोती में से फूट-फूट कर बाहर निकल पड़ता था। उसकी भीगी केशराशि उसकी सारी पीठ पर से होकर उसके घुटनों को छूते हुए लटकरहीथी। कमर पर बाई ओर पानी से भरा एक घड़ा था और दाहिने हाथ से वह चरण का बाँया हाथ पकड़े थी। चरण भी पानी से भरा हुआ एक छोटा-सा लोटा लिये था। ऐसी मातृ-मूर्ति संसार में शायद ही कभी दिखलाई देती है तो अवाक् रह जाना पड़ता है। कुँजनाथ को भी टकटकी लगाकर देखते देखकर, कुसुम को बड़ी लज्जा मालूम हुई। जल्दी से वह वहाँ से जा रही थी कि कुञ्ज की सास ने कहा—'यही हैं शायद, कुसुम ?'

कुञ्ज ने खुश होकर कहा—'हाँ माँ, यह मेरी बहिन है।'

सारा आँगन गोबर से पुता हुआ था। कुसुम ने वहीं घड़ा रखकर प्रणाम किया और माँ की देखा देखी चरण ने भी प्रणाम किया।

उसने कहा—'मुझे याद है, इस लड़के को कहीं मैंने देखा है। लड़के ने तुरन्त ही अपना परिचय दिया—'मैं चरण हूं। दादी के साथ मामी को देखने के लिये मैं तुम्हारे घर गया था।'

कुञ्ज की सास ने कहा—'शायद, वृन्दा वैष्णव का लड़का है। बित्त भर के इस लड़के की बातें तो जरा सुनो!'

मारे आश्चर्य के कुसुम का प्रफुल्लित चेहरा सहसा स्याह हो गया। एक बार उसने अपने भाई के मुंह की ओर देखा और एक बार उस अत्यन्त अशिक्षित और अप्रियवादिनी के मुंह की ओर देखा और घड़ा उठाकर लड़के का हाथ पकड़ कर रसोई घर में चली गई। एकाएक यह हो क्या गया ?

कुञ्ज भोला भाला है फिर भी सास की यह अप्रिय बात

कानों में खटकी। खासकर इस कारण कि अपनी वहिन के स्वभाव को वह अच्छी तरह जानता था। उसका चेहरा देखते ही वह भाँप गया कि इस वक्त उसके चेहरे का भाव कैसा होगया।

वह समझ गया कि कुसुम इसे किसी तरह भी नहीं देख सकेगी। उसकी सास भी मन ही मन लज्जित हो गई। ठीक वैसा ही कहना यह नहीं चाहती थी। अशिक्षा और अभ्यास के कारण ही उसके मुंह से वह वात निकल गई थी।

कुसुम ने रसोई घर में से गोकुल की विधवा को गौर से देखा। उम्र चालीस के लगभग थी, धोती तो विना किनारे के सादी ही थी परन्तु गले में सुनहला हार, कानों में वालियाँ और वाजूबन्द थे। अपनी सास से मुकावला करने पर उससे नफरत होने लगी।

वह कुञ्ज से बातें कर रही थी। बातें न सुन सकने पर भी वह अच्छी तरह समझ गई कि मेरे ही वारे में वातचीत हो रही हैं।

कुञ्ज की सास पान और सुर्ती कुछ ज्यादा खाती थी। यह काम सवेरे से ही शुरू हुआ और दनादन दिन भर चलता रहा। नहाने के वाद उसने अपने सारे शरीर में अच्छी तरह चन्दन का तिलक लगाया। इस अनुष्टान का सामान वह अपने साथ ले आई थी, यहाँ तक कि मुंह देखने के लिये छोटा सा शीशा लाना भी नहीं भूली थी।

दैनिक पूजा खतम कर कुसुम रसोई करने वैठी थी कि वह भी पास आ वैठा, इधर-उधर देखकर कुछ हंसकर वोली—'क्यों, तुम्हारे गले में न तो माला ही है और न तुमने तिलक ही लगाया है, वैष्णव की तुम कैसी वेटी हो ?'

कुसुम ने थोड़े में जवाव दिया—'मैं यह सव नहीं करती।'

'नहीं करने से तो काम चलने का नहीं। तव तो तुम्हारा छुआ हुआ पानी भी कोई नहीं पीयेगा।'

कहो कि इस तरह तुम्हें देखकर तुम्हारे भाई का ही नहीं बल्कि मुनियों का भी मन डोल जायगा या नहीं ?

कुसुम ने जोर से चिल्लाकर कहा—'तुम्हारे पाँवों पड़ती हूं दादा, खड़ा होकर सुनते मत रहो, चले जाओ यहाँ से ।'

उसका मुंह-आँख और चिल्लाना देखकर कुंज घबरा गया और वहाँ से भाग गया। और चूल्हे पर से तरकारी की कड़ाही धम्म से नीचे पटककर कुसुम जल्दी से रसोई घर के बाहर चली गई ।'

कुँज की सास वहीं बैठी रही, उनका चेहरा स्याह हो गया। उनका ख्याल था कि कलह करने में मुझसे बढ़कर दुनियाँ में कोई नहीं होगा। सपने में भी उन्होंने यह नहीं सोचा था कि यह निःसहाय और गरीब लड़की भी मुझे इस तरह अप्रतिभ करके चली जायगी।

कारण तो कुसुम नहीं समझ सकी किन्तु, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि भाई की सास उस दिन झगड़ा करने की नियत से ही आई थी। इसके अलावा उसके कहने का यह भी मतलब जान पड़ा कि वृन्दावन के अपनाने और ले जाने की इच्छा रहने पर भी कुसुम किसी खास और गूढ़ कारण से नहीं गई है। वह गूढ़ कारण क्या हो सकता है, यह तो उससे छिपा है नहीं। वह जानती ही है कि उसका आभास पाकर खुद वृन्दावन ने भी उसे ले जाने का विचार छोड़ दिया है। इस इशारे से ही कुसुम आपे से बाहर हो गई थी परन्तु, साथ ही यह भी समझ गई थी कि उसका इस तरह रसोई घर से उठकर चला आना ठीक नहीं हुआ।

कुँज की सास ने दिन भर कुछ नहीं खाया और अन्त में बहुत खुशामद करने पर रात को खाया। उसकी मान-रक्षा के लिये दिन भर कुञ्ज अपनी बहिन को बुरा-भला कहता रहा किन्तु, क्रोध और मान अभिमान खत्म हो जाने पर भी उसने अपनी बहिन से एकबार भी भोजन कर लेने के लिये नहीं कहा। दूसरे दिन सवेरे कुञ्ज की सास जब घर जाने लगी तो उसकी पदधूलि माथे से लगाकर वह चुपचाप सामने खड़ी हो गई। परन्तु, कुञ्ज की सास कुछ बोली नहीं। बल्कि अपने दामाद को लक्ष्य कर कहा—'बहिन के पास यहाँ बैठे रहने से तो काम चलने का नहीं। तुम्हें अपनी जगह जमीन देखना चाहिए।'

कुसुम के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था इसलिये सिर झुका कर वह चुपचाप सुनती रही। ठीक ही तो है, भाई भला दोनों जगहों की देख-भाल कैसे कर सकता है ?

करीब दो महीने बीत गये। इतने ही दिनों में कुञ्ज की सास ने उसे जैसे बिल्कुल बदल दिया है। अब अक्सर ही वह यहाँ नहीं रहता और रहता है तो ठीक से बात भी नहीं करता। कुसुम सोचती है कि यह एकदम इस तरह बदल कैसे गया ? अगर वह जानती थी कि कुञ्ज जैसे सरल और अल्प बुद्धि, लोग भी इस तरह बदल जाते हैं तो दुख उसे शायद, इतना असह्य नहीं होता। भाई-बहिन में अब वह स्नेह नहीं रह गया, लड़ाई-झगड़ा भी अब नहीं होता। कुसुम अब न तो लड़ना झगड़ना चाहती ही है और न उसे हिम्मत ही होती है। उस दिन महज एक रात के लिए घर में अकेली रहने के कारण भय से वह घबड़ा गई थी परन्तु अब कितनी ही रातें अकेले गुजार देनी पड़ती हैं। दुख में रहने के कारण अवश्य ही उसका डर भी खत्म हो गया है।

इन सब बातों की वह तनिक भी परवाह नहीं किया करती है किन्तु उठते-बैठते हर वक्त यह बात काँटे की तरह उसके दिल में चुभती रहती है कि वह भाई के सिर का बोझ बनकर रह रही है। वह यही सोचती है कि वह मर जाय तो भी उसके भाई की आँखों से शायद, एक कतरा आँसू नहीं निकलेगा। भविष्य में होने वाली अपने भाई के इस निर्दय व्यवहार को तब वह आँसुओं से धोने के लिए कमरे का दरवाजा बन्द कर बैठ जाती और फिर दिन भर नहीं खोलती। मन जब बहुत भारी हो जाता तो चरण के बारे में सोचने लग जाती। महज वही 'माँ-माँ' पुकारता हुआ तब दौड़ा आता और उसे छोड़ कर किसी तरह भी जाना नहीं चाहती।

अपना सारा संकोच छोड़कर कुसुम ने एक दिन उसके हाथ से एक पत्र भी वृन्दावन के पास भिजवाया था। परन्तु वृन्दावन के पास

वह संकेत बिल्कुल बेकार हुआ। क्योंकि कुसुम जैसे प्रत्युत्तर की आशा करती वह, क्या कागज पर लिखकर दो लाइन का जवाब भी नहीं आया। आये महज कुछ रुपये और लाचार होकर कुसुम को स्वीकार करने ही पड़े।

कल रात को कुँज घर आया है। सवेरे लौट जाने के लिये ज्योंही वह तैयार हुआ कि कुसुम सामने आकर खड़ी हो गई। आजकल भाई से न तो वह किसी बात के लिए कोई निवेदन ही करती है और न किसी बात के लिए उसे मना ही करती है। अनायास ही कोमल स्वर में आज कह बैठी—'दादा, क्या इतने सवेरे चले जाओगे? खाना बनाने में देर नहीं होगी, थोड़ा खाकर ही जाना !'

मुँह फेर कर और चेहरा विकृत करके कुञ्ज ने कहा—'जिस बात का डर था, वही हुआ। चलते वक्त आखिर तुमने टोक ही दिया !'

मजबूर होकर कुछ बर्दाश्त करना कुसुम ने सीख लिया था किन्तु बेवजह मुँह बनाने से उसे बहुत गुस्सा आया। जवाब में उसने चेहरा विकृत नहीं किया, किन्तु कड़े स्वर में बोली—'डरो मत, दादा, मरोगे नहीं। चलते वक्त आज तक जितनी बार मैंने तुम्हें टोका है, आदमी होते तो अब तक उतने में तुम मर गये होते।'

'मैं आदमी नहीं हूं।'

'नहीं, कुत्ते बिल्ली भी तुमसे कहीं अच्छे हैं। नमकहराम वे नहीं होते।' यह कहकर जल्दी से वह कमरे में चली गई और दरवाजा बन्द कर लिया। कुञ्ज थोड़ी देर तक बेवकूफ सा खड़ा रहा, फिर धीरे २ चल दिया।

बाहर का दरवाजा उसी तरह खुला पड़ा रहा। कोई घण्टे भर बाद उसी दरवाजे से वृन्दावन अन्दर आये और सब कुछ देखकर चकित रह गये।

कुंज के कमरे में ताला बन्द था, कुसुम का कमरा अन्दर से बंद

जल-भुन रही हूं, यह सब अच्छा नहीं लगता मुझे तुमने बुलाया था, उसी का यह बदला चुका रहे हो ?'

'यह कहकर रो पड़ी ।'

उसकी रुलाई वृन्दावन ने साफ सुन ली तो भी वह उन्हें विचलित न कर सकी । कुछ रुककर उन्होंने पूछा—'मुझे क्यों बुलाया था ?'

आँसू पोंछते हुए कुसुम ने भारी आवाज में कहा—'आते ही नहीं तो मैं कहूं किससे ? पहले तो कितने ही कामों से इधर आया-जाया करते थे किन्तु अब तो भूलकर भी नहीं आते ।'

वृन्दावन ने कहा—'भूल नहीं सकता, इसलिये नहीं आ सकता। भूल सकता तो शायद आ जाता । खैर, छोड़ो इन बातों को, कहो क्या बात है ?'

कुसुम ने कहा—'इस तरह ताने मारने से कहीं कहा जा सकता है ।'

वृन्दावन ने हँसकर शान्त स्वर में कहा—'ताने नहीं मारता, अच्छे भाव से ही पूछ रहा हूं । खैर, कहने में जैसे भी सुभीता हो वैसे ही कहो ।'

कुसुम ने कहा—'बहुत दिनों से मैं तुमसे एक बात जानना चाहती हूं । यह अफवाह किसने उड़ाई कि मैं सिर के बाल खोले रास्ते में अपना रूप दिखलाती फिरती हूं ?'

प्रश्न सुनकर वृन्दावन अवाक् हो गये । कुछ देर बाद बोले—'मैंने ।' उसके बाद ?

'मेरा यह मतलब नहीं कि अफवाह तुमने उड़ाई, ऐसा कभी सोचा भी नहीं । किन्तु—'

वृन्दावन ने बात काटते हुए कहा—'किन्तु, उस दिन तो व भी था और सोचा भी था । बड़ा आदमी होकर उस दिन मैं तु परेशान करने की नीयत से ही अपनी माँ और भाइ

था और रसोई घर खुला पड़ा था। अन्दर झाँकते ही एक कुत्ता 'कीं कीं, करके लज्जा और आक्षेप दिखलाते हुए खाना छोड़कर जल्दी से बाहर भाग गया।'

खाना कुछ तो बन चुका था और कुछ रह गया था। चूल्हा बुझ गया था, चरण नौकर के साथ पीछे रह गया था। कोई दसेक मिनट बाद माँ-माँ चिल्लाता हुआ और पास-पड़ोस के लोगों को अपने आगमन की सूचना देता हुआ वह अन्दर आ पहुँचा। अचानक लड़के की आवाज सुनकर दरवाजा खोलकर कुसुम के बाहर होते ही वृन्दावन विस्मित और विव्हल होकर आँसूओं से भरा उसका शान्त और खिन्न मुख देखते रह गये।

कुसुम ने सोचा तक नहीं था कि अचानक वे इस तरह आ जायेंगे। एक डग पीछे हटकर आँचल से माथा ढककर उसने कमरे में से आसन लाकर बिछा दिया। तब चरण दौड़ता हुआ आया और उसके पाँवों से लिपट गया। कुसुम ने इसे गोद में उठाकर चूम लिया और एक खम्बे की आड़ में खड़ी हो गई।

माँ की ओर देखकर चरण ने रुँधा सा होकर कहा—'बाबा, माँ तो रो रही है!'

वृन्दावन को यह मालूम हो गया था। पूछा—'क्या बात है? किस लिये बुलाया था?'

तब तक कुसुम अपने को सम्भाल नहीं पाई थी। वह जवाब नहीं दे सकी।

वृन्दावन ने फिर पूछा—'पत्र में लिखा था कि दादा से आकर मिल जाना। कहाँ हैं वे।'

कुसुम ने भर्राई आवाज में कहा—'मर गये!'

'अरे, मर गये? क्या हुआ था?'

उनका यह व्यंग कुसुम को बहुत कड़ा लगा। अपनी हालत भूलकर वह जल उठी और बोली—'देखो, मजाक मत करो। मैं

जल-भुन रही हूं, यह सब अच्छा नहीं लगता मुझे तुमने बुलाया था, उसी का यह बदला चुका रहे हो ?'

'यह कहकर रो पड़ी ।'

उसकी रुलाई वृन्दावन ने साफ सुन ली तो भी वह उन्हें विचलित न कर सकी । कुछ रुककर उन्होंने पूछा—'मुझे क्यों बुलाया था ?'

आँसू पोंछते हुए कुसुम ने भारी आवाज में कहा—'आते ही नहीं तो मैं कहूं किससे ? पहले तो कितने ही कामों से इधर आया-जाया करते थे किन्तु अब तो भूलकर भी नहीं आते ।'

वृन्दावन ने कहा—'भूल नहीं सकता, इसलिये नहीं आ सकता। भूल सकता तो शायद आ जाता । खैर, छोड़ो इन बातों को, कहो क्या बात है ?'

कुसुम ने कहा—'इस तरह ताने मारने से कहीं कहा जा सकता है ।'

वृन्दावन ने हँसकर शान्त स्वर में कहा—'ताने नहीं मारता, अच्छे भाव से ही पूछ रहा हूं । खैर, कहने में जैसे भी सुभीता हो वैसे ही कहो ।'

कुसुम ने कहा—'बहुत दिनों से मैं तुमसे एक बात जानना चाहती हूं । यह अफवाह किसने उड़ाई कि मैं सिर के बाल खोले रास्ते में अपना रूप दिखलाती फिरती हूं ?'

प्रश्न सुनकर वृन्दावन अवाक् हो गये । कुछ देर बाद बोले-'मैंने ।' उसके बाद ?

'मेरा यह मतलब नहीं कि अफवाह तुमने उड़ाई, ऐसा कभी सोचा भी नहीं । किन्तु—'

वृन्दावन ने बात काटते हुए कहा—'किन्तु, उस दिन तो कहा भी था और सोचा भी था । बड़ा आदमी होकर उस दिन मैं तुम्हें परेशान करने की नीयत से ही अपनी माँ और भाइयों को लेकर

तुम्हारे यहाँ खाने आया था, उस दिन जो कर सका, वह आज नहीं कर सकता ? उसका बदला मेरी माँ से चुकाने में क्या तुम बाज आई ?'

कुसुम ने बहुत व्यथित और लज्जित होकर धीरे २ कहा—मुझसे बड़ी गलती हो गई। तब मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था।

'अब पहचान गई।'

कुसुम चुप होगई। वृन्दावन भी थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद सहसा कह पड़े—'अच्छी बात है। अभी २ एक कुत्ता तुम्हारे रसोई घर में घुसकर सब बर्तन और खाना खराब कर गया है।'

कुसुम ने उसी तरह शान्त-सहज भाव से कहा—'कर जाने दो। मुझे तो खाना नहीं है, पहले जाने होती तो बनाती भी नहीं।'

'शायद, आज एकादशी है ?'

कुसुम ने सिर झुकाकर कहा—'पता नहीं। मैं वह सब नहीं करती।'

'एकादशी नहीं करती ?'

कुसुम ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर झुकाये खड़ी रही।

वृन्दावन ने संदिग्ध स्वर में कहा—'पहले तो करती थीं, छोड़ कैसे दिया ?'

बार-बार चोट पाकर कुसुम अधीर हो गई। उसने चिढ़कर कहा—'नहीं करती, मेरी मरजी। जान-बूझकर कोई अपना सर्वनाश करना नहीं चाहता इसलिए नहीं करती। दादा का व्यवहार तो बर्दाश्त से बाहर हो गया है किन्तु तुम्हारे व्यवहार से तो तबियत होती है कि गले में रस्सी बाँध कर लटक जाऊँ।'

वृन्दावन ने कहा—'नहीं, ऐसा मत करना। मेरे व्यवहार का विचार फिर कभी हो जायगा और अगर न भी हो तो कोई बात नहीं। परन्तु, दादा का व्यवहार बर्दाश्त से बाहर क्यों हो गया ?'

कुसुम ने उत्तेजित होकर कहा—'उसकी बड़ी भारी कहानी

है। इतना धैर्य्य मुझमें नहीं है कि उसे सुना सकूँ। थोड़े में यही है कि अपना घर-बार छोड़कर अब मेरी चिन्ता नहीं कर सकते। उनकी सास का हुक्म नहीं है। मुझे खाना-कपड़ा भी देना बन्द कर दिया है। अगर, चरण अपनी माँ का भार नहीं लिए होता तो अब तक मैं सूखकर मर गई होती।' इस वक्त मैं ··यह कह कर वह अचानक रुक गई और सोचने लगी कि और कुछ कहना ठीक है या नहीं। फिर कहा—'अब मैं बिल्कुल तुम्हारे सिर का बोझ बन गई हूं। इसलिये एक दिन, एक क्षण भी यहाँ रहने को जी नहीं चाहता।

वृन्दावन ने हँसते हुए कहा—'बस, इसीलिये रहने को जी नहीं चाहता।'

कुसुम ने एक बार सिर उठाकर फिर नीचे कर लिया। इस सहज सहास्य प्रश्न में जो तानाकशी की गई थी उससे उसे गहरी चोट लगी।

वृन्दावन ने कहा—'चरण अपनी माँ का भार अवश्य लेगा किन्तु तुम रहना कहाँ चाहती हो ?'

कुसुम ने वैसे ही सिर झुकाये हुए कहा—'मैं कैसे जानूँ ? वे ही जानें।'

'वे ही कौन, मैं ?'

कुसुम चुप रही।

वृन्दावन ने कहा—'यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे किसी काम में दखल नहीं दे सकता। केवल माँ कह सकती हैं। उनके साथ तुमने चाहे जैसा व्यवहार किया परन्तु अगर चरण का हाथ पकड़ कर तुम उनके पास चली जाओ तो उपाय वे अवश्य कर देंगी। किन्तु, तुम्हारे भाई ?'

कुसुम की आँखों से आँसू बह चले। आँसू पोंछकर उसने कहा—'मैंने कह तो दिया कि दादा मर गये। किन्तु, यह तो बतलाओ कि पैदल चल कर, कैसे मैं भिखारी की तरह तुम्हारे गाँव जाऊँगी ?'

वृन्दावन ने कहा—'यह तो मैं नहीं जानता किन्तु, जा सकतीं तो अच्छा होता। इसके अलावा कोई सीधा रास्ता मैं नहीं देखता।'

थोड़ी देर तक चुप रहने के वाद कुसुम ने कहा—'मैं नहीं जाऊँगी।'

'तुम्हारी मर्जी।'

अत्यन्त संक्षिप्त और सीधा जवाव था। इसमें कोई छिपा हुआ अर्थ या अस्पष्ट वात नहीं थी। अव सचमुच ही कुसुम को भय हुआ।

थोड़ी देर तक सिर उठाते हुए वह इस वात की प्रतीक्षा करती रही कि वृन्दावन और कुछ कहते हैं या नहीं। इसके वाद उसने नम्रता और संकोच से कहा—'परन्तु यहाँ भी तो मेरे लिये अव कोई जगह नहीं रह गई है। मैं दादा को भी दोषी नहीं कहती क्योंकि अपना नुकसान कर जो दूसरों की भलाई नहीं करता, उसे दोषी नहीं कहते। किन्तु, तुम तो मुझे इस तरह झाड़ कर नहीं त्याग सकते ?'

वृन्दावन ने कोई जवाव नहीं दिया। उठकर खड़े होते हुए कहा—'अव देर हो रही है। चरण, तू चलेगा या यहीं रहेगा ? अच्छा रह और जव तुम्हारी मर्जी हो तो आना। मुझे विश्वास है कि चरण का हाथ पकड़ कर यदि तू माँ के सामने जा खड़ी हो तो इसमें तुम्हारा कुछ अपमान नहीं हो जायेगा। अच्छा तो अव मैं चला। यह कहकर ज्योंही आगे वढ़े कि कुसुम ने चरण को गोद से उतार कर सीधी खड़ी होकर कहा—'आज मैं समझ गई।' अपनी इस विपत्ति की वात भी मुँह खोलकर कहने पर जव तुमने खड़े होकर कहा—'देर हो रही है, मैं चला।' और यह जानते हुए भी कि मैं निराश्रय हूं, तुमने आश्रय देना नहीं चाहा, तव तुमसे मुझे न तो कोई उम्मीद ही है और न कुछ कहना ही है। फिर भी, मैं एक वात पूछना चाहती हूं, ठीक जवाव दोगे ?

वृन्दावन ने उदास और विस्मित होकर कहा—दूँगा। आश्रय

देने से मैंने कभी इन्कार नहीं किया है बल्कि उसे ग्रहण करने में तुम्हीं ने बार २ इन्कार किया है।'

कुसुम ने दृढ़ स्वर में कहा—'झूँठ बात है। उस वक्त न मालूम मुझे कैसे कुमति आ गई थी कि माँ के दिल को ठेस पहुँचाकर मैंने बहुत अपराध किया। अन्तर्यामी जानते हैं कि उसका दुख मरने पर भी मेरे मन से नहीं निकलेगा। और यही कारण है कि सास, पति और पुत्र सब कुछ रहने पर भी मैं दूसरे के सिर का बोझ बनी हूं, निराश्रय हूं। आजतक ससुराल का मुंह नहीं देख सकी। मेरा अपराध कितना ही महान् क्यों न हो फिर भी मैं उस घर की बहू हूं। दिन में पैदल चलकर भिखारियों की तरह तुम मुझे वहाँ जाने को कैसे कह रहे हो? तुम्हें और कोई सरल रास्ता दिखाई नहीं दिया क्यों, मालूम है?–हम बड़े गरीब हैं। भीख माँग-माँग मेरी माँ ने हमें पाल-पोस कर बड़ा किया। और मामूली पेशा से दादा अपने दिन काटते रहे। कभी तुमने सोचा कि भिखारिन की लड़की अगर भिखारिन की तरह हो जाय तो इसमें क्या हर्ज है? परन्तु यह तुम्हारी भूल ही है, घमण्ड भी है। यहीं रह कर मैं मर जाऊंगी किन्तु, तुम्हारे आगे हाथ फैलाकर तुम्हारी हंसी का पात्र मैं नहीं बनूंगी!'

वृन्दावन अवाक् होकर खड़े-खड़े सुनते रहे। बोले–'जाता हूं। मुझे अब और कुछ नहीं कहना है।'

वैसे ही कुसुम ने भी जवाब दिया–'जाओ। किन्तु जरा रुको, एक बात और है, कृपया झूंठ मत बोलना।' मैं पूछती हूं, क्या मेरे बारे में तुम्हें कुछ शक पैदा हो गया है? अगर, हुआ है तो—तुम्हारे सामने खड़ी होकर मैं शपथ लेती हूं कि—

वृन्दावन दो एक डग आगे बढ़ गये थे। वे रुक गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर बात काटकर बोले—'यह क्या?' बेकार शपथ क्यों ले रही हो? तुम्हारे बारे में मैंने कुछ भी नहीं सुना है। फि उसके अधखुले मुंह की ओर देखकर मधुर किन्तु दृढ़ स्वर में कहा—

'इसके अतिरिक्त किसी के चाल चलन पर नजर रखने की मेरी आदत नहीं है, और यह ठीक भी नहीं है। तुम्हारे स्वभाव या चरित्र के बारे में जानने की मुझे कुछ भी उत्सुकता नहीं है और मैं उसकी आलोचना करना भी नहीं चाहता। सब को मैं अच्छा समझता हूं और तुम्हें भी बुरा नहीं समझता।'

यह कहकर वृन्दावन धीरे-धीरे बाहर निकल गये।

वज्राहत की तरह कुसुम स्तब्ध रह गई।

चरण ने पूछा—'माँ, नहाने नहीं चलोगी?'

कुसुम ने कोई जवाब नहीं दिया। चरण को लेकर धीरे-धीरे वह अपने कमरे में जाकर चारपाई पर पड़ रही और उसे छाती से लगा कर फ़ूट-फूट कर रोने लगी।

९

बहुत दिन बीत गये। माघ बीतकर फागुन आ गया है। चरण जब से गया तब से लौटकर फिर नहीं आया। यह बात बिल्कुल साफ है कि उसे आने नहीं दिया गया। मतलब यह कि अब वे लोग किसी तरह का रिश्ता रखना उचित नहीं समझते हैं। उधर का तो कोई समाचार जल्दी मिलता नहीं परन्तु अब इसने भी तय कर लिया है कि चिट्ठी लिखकर अपने आप को तुच्छ नहीं करेगी। भइया की वही हालत है। सब ओर से मानो कुसुम की जान आफत में है। अब वह घर से बाहर भी बहुत कम निकलती है और सखी-सहेलियों से मिलना-जुलना भी छोड़ दिया है। अन्धेरा रहते ही नदी में नहाकर वह पानी भर लाती है और बाजार के दिन गोपाल की माँ उसका सामान ला देती है। इस तरह बाहर की सभी बातों से अपने आप को अलग कर लेने से उसके दिन सचमुच ही बड़े कष्ट से कटते हैं।

कुसुम सुई का काम बहुत अच्छा करती है जो कोई कुछ भी परिश्रमिक देता तो वह खुशी से ले लेती और अगर, कोई भूल जाता तो वह भी भूल जाती। इन्हीं वजहों से पास-पड़ोस के कई घरों की मच्छरदानी, तकियों के गिलाफ और बिस्तर की चादरें वही बनाया करती है। आज तीसरे पहर अपने घर के सामने एक चटाई बिछा-कर एक आधी बनाई हुई मच्छरदानी बना रही थी कि अचानक उसके हाथ रुक गये। वह मन ही मन पहले दिनों की बातें सोचने लगी।

दलवल सहित जिस दिन उसके भाई का न्यौता स्वीकार कर आये थे, और विवश होकर लाज-संकोच छोड़कर उसे मुखरा की तरह पहले-पहल अपने पति से वातचीत करनी पड़ी थी, उस दिन की सब बातें उसे याद आगईं। जब दुख असह्य होने लगता तो सब काम छोड़कर वह उसी याद को लेकर बैठी रह जाती। माँ जैसे अपने इकलौते पुत्र को लेकर अनेक तरह हिला-डुलाकर लाड़-प्यार करती है उसी तरह वह अपनी इस एक मात्र याद को अनिर्वचनीय प्रेम से घुमा-फिराकर अत्यन्त सन्तोष का अनुभव करती। उस समय जैसे उसका सारा दुख हवा हो जाता। उन दोनों का उस दिन का वाद-विवाद, सब के भोजन का गुप्त आयोजन और रसोई तैयार कर पति और देवरों को परोसना, सास की सेवा और सबके आखिर में शाम को अपने लिये वही रूखा-सूखा, बचा हुआ वासी भोजन।

टप-टप करके कुसुम की आँखों से आँसू गिरने लगे। नारी होकर इससे अधिक दुख की वात न तो वह सोच सकती थी और न उसकी इच्छा होती थी। वह सोचती कि जो औरत रोज ही ऐसा करती है उसके संसार में और कुछ वाकी नहीं रह गया।

इसके वाद उसे उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन सारा सम्बन्ध तोड़कर वे चले गये। उसने भी उस दिन उन्हें मना नहीं किया वल्कि सम्बन्ध तोड़ने में मदद ही पहुँचाई। परन्तु उस समय चरण की वात उसने नहीं सोची थी। अभिमान के आवेश में यह वात उसके मन में नहीं आई थी कि साथ ही वह बिछुड़ कर मुझसे अलग हो जायगा। अब ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं, उसे यही डर होता है कि कहीं ऐसा न हो कि चरण फिर यहाँ आने ही न पावे और इसी चिन्ता में हर क्षण उसकी छाती का खून जला करता है। कहीं सचमुच ही वह न आया तो मैं कैसे जिन्दा रहूंगी ? और सब से बड़ी दुख की वात यह है कि जो सन्देह उसे पहले से था और दुख के दिनों में जो जोर पहुँचा सकता था, वह अब नहीं रहा, बिल्कुल

खत्म हो गया। उसके हृदय का सुप्त विश्वास अब जाग उठा है और हर समय सजग किया करता है कि सब मिथ्या है। उसके बचपन का कलंक और बदनामी, सब मिथ्या है। वह हिन्दू की बेटी है इसलिए पाप और अन्याय किसी तरह भी उसके मन में प्रवेश नहीं कर सकता। चाहे जानकर हो या अनजान में परन्तु हिन्दू के घर की लड़की अपने पति को छोड़ कर अन्य किसी से इतना प्रेम नहीं कर सकती। किसी गैर की सेवा शुश्रूषा करने के लिये उसका मन इस तरह व्याकुल हो ही नहीं सकता। अगर वे पति न होते तो भगवान उसे अवश्य ही सुमार्ग दिखला देते—उसके हृदय के किसी कोने में थोड़ी लज्जा अवश्य ही बाकी रखते।

आज बाजार का दिन है। गोपाल की माँ बड़ी देर से बाजार गई हुई है। उसी के लिये सदर दरवाजा खुला है। इतने ही में अचानक बाबू कुँजनाथ नौकर के साथ, अपना अंग्रेजी जूता मचमचाते पास-पड़ोस के लोगों में ईर्ष्या और विस्मय पैदा करते हुए, घर में आ पहुँचे। कुसुम जान तो गई किन्तु अश्रुपूर्ण आँखों को शर्म के कारण ऊपर नहीं उठ सकी।

सीधे बहिन के सामने पहुँचकर कुँजनाथ ने कहा—'तुम्हारे वृन्दावन फिर से शादी कर रहे हैं।'

कुसुम के हृदय की धड़कन रुक गई। काठ की पुतली सी सिर झुकाये खड़ी रह गई।

कुँज ने अपनी आवाज तेज करके कहा—'देखता हूं कि पानी में रहकर वह कैसे मगर से बैर करता है! मुझे यही देखना है कि नन्द वैष्णव कितने बड़े बाप का बेटा है जो हमारी जमीदारी में रह कर हमारा ही अपमान करना चाहता है।'

कुसुम की समझ में यह बात नहीं आई। बड़े कष्ट से उसने पूछा—'नन्द वैष्णव कौन है?'

कुँज ने कहा—'हमारी प्रजा। मेरे ही तालाव के किनारे मकान बनाया है। मैं उसका घर फूंक दूंगा। उसी साले की लड़की है। फागुन में शादी है, सब तय हो चुका है। भूता, जरा तम्वाकू तो चढ़ा ला।'

कुसुम ने सिर नहीं उठाया था इसलिए नौकर को नहीं देख सकी थी। वह संकोच के साथ ठीक से बैठ गई।

कुँज ने कहा—'क्यों भूता, देखने में नन्द की लड़की कैसी है?' भूता ने कुछ सोच समझकर कहा—'अच्छी है।'

कुञ्ज ने तड़पकर कहा—'अच्छी है? कभी नहीं! मेरी वहिन की तरह है?'

'हुँह, कभी तुमने ऐसा रूप देखा है?'

भूता के जवाव देने से पहले ही कुसुम उठकर अन्दर चली गई।

कुछ देर वाद तम्वाकू पीते २ कुञ्ज कुसुम के कमरे के सामने आया और कहा—'क्यों, मैंने कहा था न कुसुम, कि वृन्दावन की तरह कृतघ्न और वदजात कोई दूसरा नहीं होगा? मेरी वात सच निकली कि नहीं? माँ (सास) कहती है कि वेद झूंठा हो जाय किन्तु मेरे कुँजनाथ का कहना कभी झूंठा नहीं हो सकता। क्यों भूता, माँ कहती हैं न?'

अन्दर से कुछ जवाव नहीं मिला किन्तु कुछ धीमी आवाज आने लगी।

पता नहीं, क्या सोच कर कुञ्ज हुक्का रखकर दरवाजा खोलकर अन्दर जा खड़ा हुआ। वहुत दिनों के वाद आज अचानक उसकी आँखों में दो बूंद आँसू आ गये। कुसुम चारपाई पर औंधी पड़ी रही। कुञ्जनाथ थोड़ी देर तक देखते रहने के वाद अपने आँसू पोंछकर धीरे से चारपाई पर एक ओर वैठ गया और अपनी वहिन के सिर पर हाथ रख कर धीरे से कहा—'कुसुम; तुम कुछ चिन्ता मत करो। चाहे जैसे भी हो किन्तु यह शादी मैं भी किसी तरह नहीं होने दूंगा। तुम

देख लेना, तुम्हारा दादा जो कहता है वह करता भी है। परन्तु तुमने भी तो कभी ससुराल में जाना नहीं चाहा, वहिन! हमने कितनी कोशिश की, समझाया-बुझाया किन्तु तुमने कुछ खयाल ही नहीं किया।'

आखिरी वात कहते २ कुञ्ज रुआँसा होगया।

कुसुम अब अपने को सम्भाल न सकी, फूट-फूट कर रोने लगी। वह निराश हो गई थी कि भाई के दिल में उसके लिए तनिक भी स्नेह नहीं रह गया है।

कुञ्ज की आँखों में आँसू वहने लगे। चुपचाप वहिन का सिर धीरे धीरे सहलाते हुए वह उसे सान्त्वना देने लगा।

शाम हो गई। अपने कोट के किनारे से अच्छी तरह आँसू पोंछ कर उसने फिर कहा—'चिन्ता मत करो, वहिन! मैं कहता हूं, शादी मैं किसी तरह भी नहीं होने दूंगा।'

अव कुसुम ने रोते २ कहा—'नहीं दादा, तुम इसमें वाधा मत डालना।'

कुञ्ज ने अत्यन्त विस्मित होकर पूछा—'क्या कहा? मैं वाधा न डालूं?' हमारी आंखों के सामने शादी हो और हम खड़े २ तमाशा देखें? कैसे कह रहे हो तुम यह वात?'

कुसुम ने कहा—'नहीं दादा, तुम इसमें वाधा मत देना।'

कुँज विगड़ गया, कहा—'वाधा न देना?'—जरूर दूँगा इसमें तुम्हारा अपमान हो या न हो किन्तु मेरा अपमान अवश्य है। यह मुझसे वर्दाश्त नहीं हो सकेगा। वह मेरी प्रजा है तुम्हें क्या मालूम! सुनकर लोग मुझ पर थूकेंगे।'

तकिये में मुंह गढ़ाकर कुसुम वार २ सिर हिला-हिलाकर कहने लगी—'मैं तुम्हें मना करती हूं दादा, तुम इसमें हाथ मत डालना। हमारे साथ उनका कोई रिश्ता नहीं। गोलमाल करके झगड़ा और मत वढ़ाना। शादी होती है तो होने दो।'

कुञ्ज ने वहुत विगड़ कर कहा—'नहीं।'

'नहीं क्यों ? पहले भी तो उन्होंने मुझे छोड़कर शादी की थी। फिर करने दो। हमारे लिए दोनों ही वरावर हैं। मैं तुम्हारे पावों पड़ती हूं। दादा वेकार गोलमाल पैदा कर मेरा सव सम्मान नष्ट मत करो। जिस वात में वे सुखी हों, वही ठीक है।'

'हूं' कहकर थोड़ी देर तक कुञ्ज वैठा रहा, फिर कहने लगा—'तुम्हें तो हमेशा से देखता आ रहा हूं। एक वार जो 'ना' कह दिया तो किसके वाप की मजाल है, जो तुमसे 'हाँ' कहलवा ले ? तू किसी की वात माने या न माने परन्तु तेरी वात सवको माननी चाहिये।

कुसुम कुछ नहीं वोली।

कुंजनाथ फिर कहने लगा—'और वैसे वात झूठ भी नहीं है। जव किसी तरह ससुराल जाने के लिए तू राजी ही नहीं होगी तो उनकी गृहस्थी कैसे चलेगी ? अभी तो वृन्दावन की माँ जिन्दा हैं किन्तु हमेशा तो वे रहेंगी नहीं ?'

फिर भी, कुसुम ने कोई जवाव नहीं दिया।

थोड़ी देर तक चुप रहने के वाद सहसा कुँज कहने लगा—अच्छा कुसुम। वह शादी करें या न करें किन्तु तुम इतना रोती क्यों हो ?'

कुसुम इसका क्या जवाव देती ?

कुँजनाथ अंधेरे में यह देख नहीं सका कि कुँज के आँसू कम हो गये थे। परन्तु इस सवाल से फिर आँसू सवेग वहने लगे।

कुँज चला गया। उस दिन की वात याद कर कुसुम लज्जा और पश्चताप से गढ़ने लगी। छिः छिः मरकर भी तो इस लाज से त्राण नहीं मिलने का। इसीलिये तो मुझे रखना किसी तरह उनके मन की वात नहीं रह गई थी। फिर भी मैंने कितनी खुशामद की थी ?

जिस समय उनके यहाँ नई शादी की तैयारी हो रही थी उस समय यहाँ मैंने अपने आपको अभिमान पूर्वक उनकी बहू बतलाया था। जहाँ राई का सा भी प्रेम नहीं था, वहाँ मैंने पहाड़-सा अभिमान किया था। ईश्वर! इस असह्य दुख पर भी तुमने मेरे माथे पर कैसी मर्मान्तिक लज्जा का बोझ लाद दिया?

छाती फाड़ कर ठण्डी साँस बाहर निकल पड़ी। आह! इसीलिए तो मेरे स्वभाव और चरित्र के बारे में उन्हें जरा भी कुतूहल नहीं! और उस पर भी मैं निर्लज्ज शपथ लेने चली थी!

कुञ्ज ने बहुत बिगड़ कर कहा—'नहीं।'

'नहीं क्यों ? पहले भी तो उन्होंने मुझे छोड़कर शादी की थी। फिर करने दो। हमारे लिए दोनों ही बराबर हैं। मैं तुम्हारे पावों पड़ती हूं। दादा बेकार गोलमाल पैदा कर मेरा सब सम्मान नष्ट मत करो। जिस बात में वे सुखी हों, वही ठीक है।'

'हूं' कहकर थोड़ी देर तक कुञ्ज बैठा रहा, फिर कहने लगा—'तुम्हें तो हमेशा से देखता आ रहा हूं। एक बार जो 'ना' कह दिया तो किसके बाप की मजाल है, जो तुमसे 'हाँ' कहलवा ले ? तू किसी की बात माने या न माने परन्तु तेरी बात सबको माननी चाहिये।

कुसुम कुछ नहीं बोली।

कुंजनाथ फिर कहने लगा—'और वैसे बात झूंठ भी नहीं है। जब किसी तरह ससुराल जाने के लिए तू राजी ही नहीं होगी तो उनकी गृहस्थी कैसे चलेगी ? अभी तो वृन्दावन की माँ जिन्दा हैं किन्तु हमेशा तो वे रहेंगी नहीं ?'

फिर भी, कुसुम ने कोई जवाब नहीं दिया।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद सहसा कुंज कहने लगा—अच्छा कुसुम। वह शादी करें या न करें किन्तु तुम इतना रोती क्यों हो ?'

कुसुम इसका क्या जवाब देती ?

कुँजनाथ अंधेरे में यह देख नहीं सका कि कुँज के आँसू कम हो गये थे। परन्तु इस सवाल से फिर आँसू सवेग बहने लगे।

कुँज चला गया। उस दिन की बात याद कर कुसुम लज्जा और पश्चताप से गढ़ने लगी। छिः छिः मरकर भी तो इस लाज से त्राण नहीं मिलने का। इसीलिये तो मुझे रखना किसी तरह उनके मन की बात नहीं रह गई थी। फिर भी मैंने कितनी खुशामद की थी ?

जिस समय उनके यहाँ नई शादी की तैयारी हो रही थी उस समय यहाँ मैंने अपने आपको अभिमान पूर्वक उनकी बहू बतलाया था। जहाँ राई का सा भी प्रेम नहीं था, वहाँ मैंने पहाड़-सा अभिमान किया था। ईश्वर! इस असह्य दुख पर भी तुमने मेरे माथे पर कैसी मर्मान्तिक लज्जा का बोझ लाद दिया?

छाती फाड़ कर ठण्डी साँस बाहर निकल पड़ी। आह! इसीलिए तो मेरे स्वभाव और चरित्र के बारे में उन्हें जरा भी कुतूहल नहीं! और उस पर भी मैं निर्लज्ज शपथ लेने चली थी!

१०

वृन्दावन का ऐसा स्वभाव है कि किसी भी दशा में घबराकर गुस्सा होना या बिगड़ना वे लज्जाजनक और अत्यन्त घृणास्पद समझते हैं। ऐसे आदमी चाहे कितने ही नाराज क्यों न हों परन्तु अपने आपको सम्भाल सकते हैं। चाहे कुछ भी हो किन्तु अपने विपक्षी से शोरगुल और लड़ाई-झगड़ा मचाकर वे चार आदमियों को इकट्ठा नहीं कर लेते हैं। तो भी कुसुम के उस दिन के वार २ के कड़े व्यवहार और अनुचित अभियोगों से उत्तेजित होकर वेवजह ही कुछ कड़ी वातें कह आये इससे उन्हें वहुत दुःख हुआ। इसीलिये दूसरे दिन लड़के चरण को बुलाने के वहाने उन्होंने एक दासी और एक नौकर के साथ गाड़ी भेजकर यह उम्मीद की कि यह इशारा समझकर शायद बुद्धिमती कुसुम चली आवे। सचमुच ही अगर वह चली आये तो एक दिन के लिये भी उसका क्या उपाय होगा। इस कठिन प्रश्न का समाधान उन्होंने कर लिया था कि घर में माँ हैं, वे सम्भाल ही लेंगी। अपनी माँ की कार्यकुशलता पर उन्हें वहुत विश्वास है। किसी भी संकट की हालत में माँ कोई न कोई उपाय अवश्य कर लेंगी और वह काम करेंगी जिससे सवकी भलाई हो। माँ से विना कुछ वतलाये ही इसी विश्वास पर उन्होंने गाड़ी भेज दी थी और आशा, आनन्द, लज्जा और भय से वेचैन होकर वे राह देख रहे थे कि कम से कम माँ से क्षमा-याचना करने वह जरूर आवेगी।

गाड़ी केवल चरण को लेकर दोपहर को लौट आई। चण्डी-मण्डप के अन्दर से ही ओट में से देखकर वृन्दावन स्तव्ध रह गये।

वृन्दावन की पाठशाला इधर कुछ दिनों से पहले की सी नहीं रह गई है। पण्डित जी की लापरवाही के कारण बहुत से छात्र अनुपस्थित होने लगे हैं और जो आते हैं उनका सारा दिन तालाब में से पट्टी धोकर लाने में ही गुजर जाता है। ठाकुर जी की आरती के बाद जो प्रसाद खाने को मिलता है, केवल वही क्रम बाकी रह गया है। शायद, अकृत्रिम भक्ति के कारण ही ऐसा होता है—उस समय अनुपस्थित होकर विद्यार्थी शायद गोराङ्ग महापुरुष की मर्यादा में कमी करना नहीं चाहते।

एक समय सहसा वृन्दावन ने अपनी पाठशाला पर पूरा ध्यान देना शुरू कर दिया। पट्टी धोकर लाने में छः घण्टे का समय लग जाता था उसे घटाकर पन्द्रह मिनट कर दिया और इस बात पर भी पूरा ध्यान रक्खा गया कि छात्र दिन भर गायब रह कर केवल आरती के समय ही गौराङ्ग-प्रेम से आकृष्ट होकर टिड्डियों की तरह दालान में घुस न जाँय।

कोई दसेक दिन बाद एक दिन तीसरे पहर पहाड़ा याद करने के लिये वृन्दावन ने सब लड़कों को एक कतार में खड़ा किया। जोर-जोर से चिल्लाकर लड़के पहाड़ा याद करने लगे। इतने में एक भला आदमी वहाँ आ पहुँचा। झटपट उठकर वृन्दावन ने उसे बैठने को आसन दिया और उसकी ओर देखने लगे। वे उन्हें पहचान नहीं पाये।

आगन्तुक उनका समवयस्क ही था। आसन पर बैठकर हँसते हुए उसने कहा—'क्यों भाई, मुझे पहचाना नहीं।'

वृन्दावन ने कुछ शर्मिन्दा होकर कहा—'नहीं।'

उसने कहा—'मेरा जो काम है वह मैं बाद में बतलाऊंगा। मामाजी ने अपने पत्र में तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की थी, इसीलिये मैंने सोचा, विदेश जाने से पहले तुमसे अवश्य मिल लूं। मेरा नाम केशव है।'

वृन्दावन ने उछलकर अपने बचपन के मित्र को गले से लगा

लिया। पहले के अंग्रेजी-शिक्षक दुर्गादास महाशय का वह भानजा था। तव दोनों में वड़ी घनिष्टता थी। दुर्गादास की पत्नी के देहान्त के बाद केशव चले गये। तब से फिर कभी मुलाकात नहीं हुई। फिर भी दोनों एक दूसरे को याद किया करते थे और वृन्दावन को अक्सर ही अपने वाल-सखा का समाचार मास्टर साहव से मिल जाया करता था।

एम० ए० पास करके पाँच-छः साल से केशव एक कालिज में प्रोफेसर है। किसी सरकारी काम से इस समय वह विदेश जा रहा है।

कुशल-समाचार के बाद केशव ने कहा—'झूँठ बोलना तो अलग रहा, हमारे मामा कभी भी कोई वात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं करते। पिछली दफे उन्होंने लिखा था, जिन्दगी में अनेक विद्यार्थियों को पढ़ाया है किन्तु यह नहीं जानता कि वृन्दावन को छोड़कर उनमें से और कोई यथार्थ रूप में आदमी हुआ है या नहीं। आज तक मैंने कोई यथार्थ आदमी नहीं देखा था इसलिये विदेश जाने से पहले एक वार तुमसे मिलने आया हूं।'

यह वातें एक दोस्त की जवान से निकली थीं, फिर भी वृन्दावन इतने लज्जित हुए कि खोजने पर उन्हें इसका कोई जवाव नहीं मिल सका। सपने में भी उन्होंने कभी ऐसा नहीं सोचा था कि संसार में कोई आदमी उनकी इतनी प्रशंसा करेगा और खास कर इस कारण कि यह प्रशंसा सर्व प्रथम उनके पूजनीय शिक्षक के मुँह से निकली थी, वे और भी हतवुद्धि हो गये।

केशव वात समझ गये। वोले—'खैर, छोड़ो इन वातों को। ऐसी वात मैं नहीं कहूंगा जिससे तुम्हें शर्म लगती है। केवल मामा जी की राय मैंने वतला दी। अव मतलव की वात कहता हूं। सुना है, तुमने पाठशाला खोली है जिसमें निःशुल्क शिक्षा देते हो और लड़कों के कपड़ों और कितावों तक का प्रवन्ध कर देते हो। ऐसा

करने के लिये मैं भी तैयार था किन्तु छात्र नहीं जुटा सका। यह तो बताओ कि इतने छात्र कैसे जुटा लिये ?'

वृन्दावन उनकी बात नहीं समझ सके, देखते रह गये।

केशव ने हँसते हुए कहा—'अच्छा अब मैं स्पष्ट कर रहा हूं वरन् तुम समझ नहीं पाओगे। आजकल सबका यह विचार है कि देश में अगर कोई काम इस समय करने योग्य है तो वह सर्व साधारण के बालकों को शिक्षा देना है। शिक्षा देने के अलावा और चाहे हम जो भी काम करें वह सब बेकार है। कम से कम मेरा ख्याल तो यही है कि लड़कों को अगर लिखना-पढ़ना सिखला दिया जाय तो वह अपनी फिक्र आप कर लें। इञ्जिन में जब तक भाप न हो तब तक वह नहीं चल सकता क्योंकि शरीर के बल पर दो-चार आदमी धक्का देकर उसे बाल बराबर भी नहीं हिला सकते। यह सब तो खैर, तुम समझते ही नहीं तो पाकेट का पैसा खर्च कर तुम पाठशाला नहीं खोलते। मैंने तो इसीलिये शादी भी नहीं की है। हमारे गाँव में भी तुम्हारी तरह पढ़ाई-लिखाई नाम की कोई बला नहीं है। इसलिये पहले एक पाठशाला खोलकर धीरे-धीरे उसी को स्कूल का रूप दे देने की इच्छा थी। परन्तु, पाठशाला चली नहीं—लड़के ही नहीं जुट सके। हमारे गाँव के नीच जाति वाले ऐसे शैतान हैं कि किसी तरह भी पढ़ने के लिए वे अपने लड़कों को स्कूल भेजना नहीं चाहते। अपनी इज्जत-आबरू छोड़कर ऐसे लोगों के घर-घर मैं भी कुछ दिनों तक गया किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ।'

वृन्दावन का मुँह लाल हो गया फिर भी उन्होंने शान्त स्वर में कहा—'नीच जाति वालों की किस्मत अच्छी थी कि बड़े आदमियों की पाठशाला में उन्होंने अपने लड़के नहीं भेजे। किंतु, हमारे जैसे छोटे आदमियों के घर-घर घूमकर तुम्हारा भी ... इस तरह इज्जत आबरू खोना ठीक नहीं हुआ, भाई ?'

वृन्दावन का यह व्यंग केशव के दिल में तीव्र ...

अप्रतिभ होकर उन्होंने कहा—'नहीं भाई, तुमको नहीं, तुम लोगों की वात थोड़े ही है। छिः छिः मैंने यह नहीं कहा। ऐसी बात नहीं—तुम जानते हो—'

वृन्दावन हंस पड़े। वोले—'मुझे ठीक २ मालूम है कि तुमने मुझे नहीं कहा हमारे—आदमियों को कहा है। हम सभी जुलाहे, लोहार, ग्वाले और किसान—करघा चलाते, हल वनाते, जानवर चराते और खेती करते हैं। अच्छे कपड़े नहीं पहनते और सरकारी दफ्तरों के दरवाजों तक नहीं जा सकते इसलिये तुम हमें नीच कहते हो और किसी अच्छे काम से भी तुम्हारे जैसे सुशिक्षित और नेक लोगों की इज्जत आवरू नष्ट होने लगती है।

केशव ने सिर झुकाकर कहा—'सच मानो भाई वृन्दावन तुम्हें किसानों और चरवाहों से विल्कुल अलग समझकर ही मैंने यह वात कहदी। अगर, मैं जाने होता कि अपने को भी उन्हीं लोगों में शामिल कर तुम बुरा मान जाओगे तो ऐसी बात मैं कभी भी जुबान पर नहीं लाता।'

वृन्दावन ने कहा—'मुझे यह मालूम है किन्तु, तुम्हारे अलग समझने से तो मैं अलग हो नहीं जाता भाई! इस देश के छोटे लोगों के साथ ही मेरे पूर्वज रहते आये हैं। मैं भी किसान हूं और मैं भी स्वयं खेती वारी करता हूं। केशव, बस इसीलिए तुम्हारी पाठशाला में लड़के नहीं जुटे और मेरी पाठशाला में जुट गये। मैं उन्हीं लोगों के साथ वड़ा हुआ हूं, उनसे अलग होकर नहीं। इसीलिए बिना संकोच के वे मेरे यहाँ आये हैं और तुम्हारे यहाँ जाने का उन्हें साहस नहीं हुआ। हम अनपढ़ और गरीव हैं। अपने मुंह से हम अपने अभिमान की वात नहीं कर सकते। तुम हमें नीच कहते हो और हम चुपचाप मान भी लेते हैं। परन्तु हमारा अन्तर्यामी नहीं मानता, तुम्हारी अच्छी वातों से भी वह विचलित नहीं होता।'

लज्जित और अप्रतिभ होकर केशव सर झुकाये सुनता रहा।

वृन्दावन ने कहा—'हम जानते हैं कि इसमें हमारा नुकसान है

तो भी, तुम लोगों को आत्मीय और शुभाकांक्षी समझने में हमें डर लगता है। तुम देखते नहीं कि वृद्ध वैद्य और पोंगा पण्डित ही हम लोगों में प्रतिष्ठा पाते हैं—जैसा मैंने पाया है। किन्तु तुम जैसे बड़े-बड़े डाक्टरों और प्रोफेसरों की भी यहाँ एक नहीं चलती है। हमारे हृदय में भी देवता का निवास है और तुम लोगों की इस तरह की दया, ऊपर बैठकर नीचे यह भीख देना उस देवता को चोट पहुँचाना है, वे मुँह फेर लेते हैं।'

अब की केशव ने प्रतिवाद किया—'मुँह फेरना अन्याय है। दरअसल हम तुम से घृणा नहीं करते, तुम्हारी मङ्गल कामना चाहते हैं। तुम लोगों को चाहिए कि हम पर पूरा विश्वास करो। तुम्हारी भलाई-बुराई किस बात में है, वह हम शिक्षा के प्रभाव से बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं। तुम लोग भी देखते हो कि हम सभी बातों में उन्नत हैं। ऐसी हालत में तुम्हारा फर्ज है कि हमारी बातें सुनो।'

वृन्दावन ने कहा—'केशव, हृदय के देवता मुँह क्यों फेर लेते हैं, यह तो वही जानें, इस बात को छोड़ो। परन्तु आदमियों की तरह तुम लोग हमारी मङ्गल-कामना नहीं करते क्योंकि मालिकों की तरह करते हो। तुम लोगों में से पन्द्रह आने आदमी इसीलिये यही चाहते हैं जिससे बड़े आदमियों के बच्चों की भलाई हो और किसानों आदि के बच्चों का अधःपतन। तुम लोगों के सम्पर्क से पढ़ना-लिखना सीखकर किसान का बच्चा जब बाबू बन जाता है तो वह अपने अनपढ़ बाप-दादों को नहीं मानता है, उनकी इज्जत नहीं करता। विद्या सीखने के इस अन्तिम फल की सम्भावना हम तुम्हारे आचरण में ही पाते हैं। पहले तुम हमारे अर्थात् देश के छोटे आदमियों के आत्मीय बनना सीखो केशव, उसके बाद मंगल-कामना करो और उनके बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखलाओ। अपने आचार-व्यवहार से पहले यह दिखला दो कि तुम पढ़े लिखे लोगों का कोई [illegible]ग दल नहीं है। पढ़-लिखकर भी देश के अनपढ़ किसानों को [illegible]कुल छोटा नहीं समझते बल्कि उनकी इज्जत करते हो तभी [illegible]

होगा कि हमारे बाल बच्चे पढ़ लिखकर कभी हमारी बेइज्जती नहीं करेंगे और हमारा दल और समाज छोड़कर और जातिगत व्यवसाय इत्यादि छोड़कर हमसे अलग होने के लिये उतारू नहीं हो जायेंगे। जब तक ऐसा नहीं करते तब तक आजीवन अविवाहित रहकर हजार जीवन भी न कुरबान कर दो किन्तु छोटे आदमियों के बच्चे तुम्हारी पाठशाला में नहीं ही आयेंगे। छोटे आदमी पढ़े-लिखे भले आदमियों से डरेंगे, उनका आदर करेंगे, श्रद्धा भी रखेंगे परन्तु न तो कभी विश्वास करेंगे और न बात ही सुनेंगे। उनके मन से यह बात कभी भी हटाई नहीं जा सकेगी जिस बात में तुम्हारी भलाई है, उसी में उनकी भी।

थोड़ी बहुत देर तक चुप रहने के बाद केशव ने कहा—'मालूम होता है, वृन्दावन, कि तुम्हारा ही कहना ठीक है। किन्तु मैं पूछता हूं कि यदि दोनों में विश्वास का बन्धन ही न रहे तो हम आत्मीयता की चाहे कितनी भी कोशिश क्यों न करें तो भी उसका कोई फल नहीं निकलने का ? जब तक विश्वास न करोगे तब तक कैसे यह समझाया जा सकता है कि हम अपने हैं या पराये ? इसका उपाय ही क्या है ?'

वृन्दावन ने कहा—'यह बात तो मैं पहले ही बतला चुका हूं कि अपने व्यवहार से तुम्हारे पढ़े लिखे लोगों का दल हमारे संस्कार को अगर एकदम कुसंस्कार कह कर त्याग दे, हमारे निवास स्थान, साँसारिक गतिविधि और जीवकोपार्जन के उपाय अगर तुम लोगों से एकदम अलग हों तो तुम लोगों ने कल्याण का जो रास्ता तय किया है वह सचमुच हमारे लिये भी कल्याणकारी होगा, यह नहीं समझ सकेंगे। अच्छा केशव, यज्ञोपवीत होने के बाद से क्या तुम संध्या-वन्दन करते हो ?'

'नहीं।'

'जूता पहने ही पानी पीते हो ?'

'पीता हूं।'

'मुसलमान के हाथ का बनाया खाना खा सकते हो ?'

'खा सकता हूं। कोई आपत्ति नहीं।'

'फिर मैं कह सकता हूं कि छोटे आदमियों के बीच पाठशाला खोलकर उनके बालकों को शिक्षा देने का तुम्हारा विचार विडम्बना है ! शायद, इससे भी कुछ अधिक है जिसे सुनकर शायद तुम नाराज हो जाओ।'

'धृष्टता ?'

'बिल्कुल यही। केवल इच्छा होने से ही दूसरों का या देश का भला नहीं हो सकता केशव ! तुम जिसकी भलाई करना चाहते हो उनके साथ रहने की तकलीफ भी तुम्हें उठानी पड़ेगी। अगर आचार-विचार और धर्म-कर्म में तुम उनसे बहुत आगे बढ़ जाओ तो न वे तुम्हारे पास पहुँच सकेंगे और न तुम उनके। किन्तु अब रहने दो, शाम हो रही है, जरा पाठशाला का काम कर लूं।'

'अच्छा कल सुबह फिर मिलूँगा।'

यह कह कर केशव के उठ कर खड़े होते ही वृन्दावन ने जमीन पर लेट कर उन्हें प्रणाम किया और उनके पैरों की धूल को माथे से लगाया।

देहात में घर होने पर भी केशव शहर के आदमी थे। मन ही मन अपने दोस्त के इस व्यवहार से उन्हें बहुत संकोच हुआ। ज्योंही दोनों आँगन में उतरे त्यों ही पाठशाला के लड़कों ने जमीन पर सिर रख कर उन्हें प्रणाम किया।

अपने बचपन के साथी को दरवाजे तक पहुँचा कर उन्होंने धीरे कहा—मित्र होकर भी तुम ब्राह्मण हो इसलिये तुम्हें अपनी ओर से और लड़कों की ओर से प्रणाम करता हूं, समझे न ?'

केशव ने संकोच से कहा—'हाँ समझ गया' और धीरे धीरे बाहर निकल गये।

दूसरे दिन सवेरे ही केशव आ गये और बोले—'भाई वृन्दावन, अब इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं रह गया है कि तुम यथार्थ मनुष्य हो।'

वृन्दावन ने हंसते हुए कहा—'मुझे भी नहीं रहा है, फिर ?'

केशव ने कहा— मैं तुम्हें उपदेश नहीं देता भाई, मेरा अहङ्कार कल टूट गया। केवल एक दोस्त की तरह सविनय पूछता हूं कि अपने गाँव में तो रुपया खर्च कर और अपना समय नष्ट कर तुम बालकों को शिक्षा देते हो परन्तु और भी हजारों गाँव पड़े हैं जहाँ क ख ग सिखलाने का कोई इन्तजाम नहीं है ? यह काम क्या सरकार को नहीं करना चाहिए ?'

वृन्दावन ने हंस कर कहा—'तुम्हारा सवाल तो एकदम बच्चों की तरह है। किसी अपराध के कारण अगर राधा को मारने जाओ तो वह तुरन्त हाथ उठा कर कहेगा—पण्डित जी, माधव ने भी गलती की है। जैसे माधव का अपराध बतला देने पर राधा का कोई अपराध रह ही नहीं जाता। पहले हम अपनी इस देशव्यापी मूर्खता का प्रायश्चित करलें भाई, तब देखा जायगा कि सरकार अपना काम करती है या नहीं। अपना कर्तव्य करने से पहले दूसरों के कर्तव्यों की आलोचना करना पाप है।'

'किन्तु, हम-तुम कर ही क्या सकते हैं ? इस छोटे से पाठशाला में थोड़े से बालकों को पढ़ाने से कितना प्रायश्चित होगा ?'

विस्मित होकर थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद वृन्दावन ने कहा—'नहीं भाई, तुम्हारी यह बात ठीक नहीं है। अगर हमारी पाठशाला का एक भी छात्र सचमुच आदमी बन जाय तो वह अकेला ही इन तीस करोड़ आदमियों का उद्धार कर सकता है। न्यूटन, फैरेड, राममोहन और विद्यासागर जैसे लोग विरले ही पैदा होते हैं। आशीर्वाद दो मुझे कि इस छोटी-सी पाठशाला के एक भी छात्र को यथार्थ मनुष्य बना हुआ देखकर ही मरूं। और एक बात है, मेरी

पाठशाला में एक शर्त है। कल शाम को अगर, तुम यहाँ रहे होते तो देखते कि घर जाने से पहले रोज ही हर एक छात्र इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि वड़ा होने पर कम से कम दो-एक वालकों को लिखाना-पढ़ाना मैं अवश्य ही सिखलाऊँगा। पाँच में से एक लड़का भी वड़ा होकर अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी कर सका तो वीस साल के वाद एक भी बच्चा इस देश में मूर्ख या अनपढ़ नहीं रह जायगा, मैंने हिसाव लगाकर यह देख लिया है।

ठण्डी साँस खींचते हुये केशव ने कहा—'ओह, कितनी महान् आशा है।'

वृन्दावन ने कहा— हाँ, तुम यह कह सकते हो। कभी कभी मुझे भी इस वात का डर होता है कि यह आशा दुराशा मात्र है, पर सवल मुहूर्त में सोचता हूं कि ईश्वर की कृपा-दृष्टि वनी रहे तो आशा पूरी होते कितनी देर लगती है?'

केशव ने कहा—'आज ही रात को मुझे विदेश जाना होगा वृन्दावन! ईश्वर जाने हम कव मिलेंगे। अगर मैं चिट्ठी लिखूँ तो उसका जवाव तो दोगे?'

'यह कौन-सी वड़ी वात है?'

'वड़ी वात भी कहता हूं। अगर कभी दोस्त की जरूरत पड़ी तो मुझे याद करोगे?'

'अवश्य।' कहकर केशव ने झुककर उसकी पदधूलि माथे से लगाली।

११

ठाकुर-झूला का जलसा वृन्दावन की माँ बहुत धूमधाम से मनाती हैं। कल ही खत्म हुआ। काफी थक जाने के कारण वृन्दावन बहुत देर तक सोते रहे। कमरे के बाहर से ही माँ ने आवाज दी—'वृन्दावन, जरा जल्दी उठकर बाहर तो आ बेटा।'

माँ की घबराई आवाज सुनकर वृन्दावन झटपट उठ बैठे और पूछा—'क्या हुआ माँ ?'

दरवाजा खोलकर माँ अन्दर आई और बोली—'मैं पहचानती नहीं बेटा, तुम्हारी पाठशाला का कोई छात्र बाहर बैठा हुआ बहुत रो रहा है। उसके बाप को कै-दस्त हो रहे हैं, उठ-बैठ नहीं सकता।'

वृन्दावन तुरन्त बाहर आये। उन्हें देखते ही शिब्बू ग्वाले के लड़के ने रोते २ कहा—पण्डित जी, बाबा न तो आँख ही खोल रहे हैं और न बोल पा रहे हैं।'

वृन्दावन ने सस्नेह उसके आँसू पोंछे और उसका हाथ पकड़कर चल पड़े।

शिब्बू का आखिरी समय आ गया था। इन्हीं दिनों हर साल हैजा फैला करता है। अबकी साल पहले शिब्बू को ही हुआ। कल रात को शिब्बू को हैजा हुआ और बिना किसी दवा-दारू के वह अब तक बचा रहा। वृन्दावन के आने के घन्टे-भर बाद ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

बङ्गाल के गाँवों में एकाध ऐसे डाक्टर होते हैं जो खुद ही पढ़कर डाक्टर बन जाते हैं। इस गाँव में भी गोपाल नाम का एक

डाक्टर है। कल रात को उन्हें बुलाया गया तो हैजे का नाम सुनते ही उन्होंने दो रुपया फीस माँगी। अपने अनुभवों से यह बात वे अच्छी तरह समझ गये हैं कि ऐसे मामलों में उधार रखने का नतीजा यही होता है कि छोटे आदमी उनकी फीस चुकाने के लिए उनकी दवा खाकर बचे नहीं रहते। नकद रुपये न जुट सकने के कारण शिब्बू की पत्नी ने नमक डाला हुआ पानी पिलाकर अपने पति की आखिरी चिकित्सा खत्म की और उसके सिराहने बैठकर रातभर शीतला माई की दया के लिए प्रार्थना करती रही और सवेरे ही यह सब हुआ।

वृन्दावन बड़े आदमी हैं, गाँव भर के लोग उन्हें मानते हैं। अपने मृत पती का दाह-संस्कार करा देने के लिये शिब्बू की तुरन्त विधवा हुई पत्नी उसके पाँव पकड़ कर रोने लगी। भूल के कारण सूखे हुए दो हाथ और आधा पेट खाकर जिन्दा दो गायें ही शिब्बू की सम्पति के नाम पर थीं। इन्हीं गायों में से एक को बन्धक रखकर उसे इस विपत्ति से छूटने का उपाय करना होगा।

बिना किसी की कोई चीज बन्धक रक्खे वृन्दावन ने अपनी जिन्दगी में इस तरह के कई दाह-संस्कार कराये हैं। शिब्बू का दाह-सँस्कार करा कर दोपहर को वे घर वापस आये।

शाम हो गई है। अपने चण्डीमण्डप के बरामदे में एक चटाई बिछा कर अभी तक आँखें बन्द किये वृन्दावन सोये हैं। अचानक किसी के पावों की आहट सुनकर उन्होंने देखा कि शिब्बू का लड़का पास ही खड़ा है।

वृन्दावन उठ बैठे और बोले—'आ बैठ जा षष्टीकरण!'

लड़का दो-एक बार होठ हिलाकर 'पण्डित जी' कहकर रो पड़ा।

वृन्दावन ने उस सद्य पितृविहीन बालक को अपनी ओर खींच लिया। उसने रोते हुए कहा—'किशन को भी कै हो रही है।'

किशन उसका छोटा भाई है और कभी २ वह भी उसके साथ पढ़ने आता है।

बिना पेशगी लिए ही गोपाल डाक्टर आज वृन्दावन के साथ किशन को देखने गये। उन्होंने जीभ और नाड़ी देखकर दवा दी परंतु किशन ने न तो अपनी माँ की छाती फाड़ देने वाली रुलाहट पर ही ध्यान दिया और न गोपाल डाक्टर की इज्जत पर ही। सुबह होने के पहले ही डाक्टर के उस प्रसिद्ध यशस्वी हाथों को बदनाम कर वह अपने पिता के पास चला गया।

बेटे की लाश को गोद में लिए हुए सद्य विधवा माँ का मर्मान्तिक विलाप सुनकर वृन्दावन की छाती फटने लगी। खुद इनके भी एक बच्चा है। उनसे बर्दाश्त नहीं हो सका। दौड़े हुए वे घर आये और चरण को छाती से चिपटाकर रोने लगे। अपनी व्यथा महसूस कर बार २ वे मन ही मन प्रार्थना करने लगे—'हे ईश्वर, मनुष्य के अपराधों के लिए उसे चाहे जो भी सजा देना किन्तु, ऐसी सजा मत देना।' पता नहीं, भगवान ने यह प्रार्थना सुनी या नहीं किन्तु, स्वयं उन्होंने यह बात महसूस की कि आघात सहने की शक्ति चाहे और किसी में हो या न हो किन्तु उनमें तो नहीं ही है।

दो दिन बीत गये। तीसरे दिन सुना गया कि हैजे के कारण उनके पड़ोसी रसिक हलवाई की पत्नी की बुरी हालत है।

वृन्दावन की माँ देखने गई थीं, कोई दस बजे आँसू पोंछती हुई लौट आईं। घन्टे भर बाद रोने-पीटने की आवाज से मालूम हो गया कि रसिक की बीबी अपने चार-पाँच छोटे २ बच्चों को छोड़कर चल बसी।

गाँव में बड़े जोरों से हैजा फैल गया। जिन्हें भागने के लिए जगह थी, वे भाग गये किन्तु बहुतों को जगह नहीं थी इसलिते डरते २ उन लोगों ने साहस करके सूखे मुँह से कहा—'भाग कर क्या करेंगे? जब अन्न-जल खत्म हो जायगा तो एक दिन चल ही देना पड़ेगा।'

वृन्दावन के घर के सामने ही गाँव का प्रधान रास्ता है। जब तक वहाँ से 'राम नाम सत्य है' की आवाज आने से बराबर पता

चलने लगा कि उनमें से वहुतों का अन्न-जल निरन्तर खतम होने लगा है।

आसपास के गाँवों से भी दो-चार आदमियों के मरने की खबर आने लगी किन्तु बाड़ल की हालत तो दिनों दिन भयानक होने लगी। इसकी खास वजह यह थी कि और बातों में इस गाँव की हालत अच्छी होने पर भी वहाँ पीने के पानी का कुछ इन्तजाम नहीं था।

वहाँ कोई नदी नहीं है। पहले जो दो-चार पोखरियाँ थीं वे भी लापरवाही के कारण एकदम खराब हो गई थीं और उनका पानी व्यवहार के लायक नहीं रह गया था। उनकी इस बुरी हालत की ओर कोई ध्यान नहीं देता। गाँव में रहने वालों में से बहुतों का यह ख्याल है कि पानी में जब तक प्यास बुझाने और रसोई आदि बनाने की शक्ति मौजूद है तब तक उनके अच्छे-बुरे होने की ओर ध्यान देने की कोई जरूरत ही नहीं है।

यहाँ गोपाल के अलावा और कोई डाक्टर ही नहीं था। गरीबों के यहाँ जाने का उन्हें वक्त ही नहीं मिलता था और दिनों दिन हैजा बढ़ता जा रहा था। धीरे २ ऐसी नौबत आ गई कि दवा और पथ्य की बात तो अलग रही, लाशों को फेंकना एक समस्या बन गई।

किन्तु, वृन्दावन का मौहल्ला अभी तक बचा था। रसिक की पत्नी के अतिरिक्त इन पाँच-सात घरों में अभी तक मौत का प्रवेश नहीं हुआ था।

वृन्दावन के पिता अपने लिए जो तालाब खुदवा गये थे, उसका पानी अभी तक खराब नहीं हुआ था। उसी पानी का व्यवहार करके शायद, उनके पड़ौसी अभी तक बचे हुये थे।

किन्तु, चिन्ता के मारे दिनों दिन वृन्दावन सूखने लगे। लड़के की ओर देखते ही उनकी छाती का खून सूखने लगता। उनके मन में रह रह कर यही बात आती कि कोई गुप्त और अभेद्य अन्तराल क्षण प्रतिक्षण बाप बेटे के बीच बढ़ता जा रहा है। उनमें अब वह

हिम्मत नहीं रह गई थी, बीमारी या मौत का नाम सुनते ही वे काँप उठते थे। जब कोई बुलाने आता तो वे तो जाते किन्तु उनका एक-एक कदम ठीक वैसे ही पड़ता जैसे न्यायालय की ओर जाने वाले अपराधी का पड़ता है। बहुत दिनों के अभ्यास के कारण ही मानों वे जबर्दस्ती बँध कर खिंचे जाते थे। किसी का दाह-संस्कार करके जब वे लौटते और चरण को पास बुला कर उसका स्पर्श करते तो उनका सारा शरीर काँप जाता। उन्हें लगता जैसे अनजान में कोई संक्रामक कीड़ा अपने एक मात्र सन्तान के शरीर में परिव्याप्त कर रहे हैं। उन्हें बस यही चिंता रहती कि कैसे बाहर के सब संसर्गों से बचाकर आड़ में रक्खूँ।

पाठशाला बन्द हो गई है। चरण की ओर देखने पर उन्हें इस बात का भी दुःख नहीं होता। इधर कुछ दिनों से चरण के खिलाने-पिलाने, कपड़ा पहनाने और सुलाने आदि का सारा कार्य वे खुद ही करने लगे हैं जैसे इस मामले में उन्हें अपनी माँ पर भी पूरा विश्वास नहीं होता। तभी एक दिन उन्होंने अपनी माँ से सुना कि उनके पड़ौसी तारिणी मुकर्जी के छोटे लड़के को हैजा हो गया है। बात सुनते ही उनका चेहरा काला पड़ गया। यह देखते ही माँ ने कहा—'बस बेटा, अब नहीं, चरण को लेकर तुम कहीं बाहर चले जाओ।'

वृन्दावन की आँखें छलछला गईं। उन्होंने कहा—'तुम भी चलो माँ।'

माँ ने विस्मित होकर कहा—'अपने ठाकुर जी को छोड़कर ?'

वृन्दावन ने कहा—'ठाकुर जी की सेवा-पूजा पुरोहित जी कर देंगे !'

माँ ने और विस्मित होकर कहा—'अपने ठाकुर जी की सेवा-पूजा का काम दूसरे पर छोड़ दूँ और भाग जाऊँ ?'

वृन्दावन कुछ लज्जित हो गये। बोले—'नहीं माँ, अपना

भार तुम अपने ही ऊपर रहने दो, बस दो दिनों बाद आकर फिर सम्भाल लेना।'

माँ ने सिर हिलाते हुए दृढ़ता से कहा—'ना बेटा, यह नहीं होगा। यह भार तुम्हारी दादी मुझे दे गई हैं। उसी तरह अगर मैं भी किसी को दे सकी तो दे दूंगी, नहीं तो यह मेरे सिर पर होगा। किन्तु, तुम लोग जाओ।'

वृन्दावन ने घबराकर कहा—'ऐसी हालत में तुम्हें अकेली छोड़कर मैं कैसे जाऊं? मान लो कहीं···'

माँ ने हंसकर कहा—'यह तो बड़ी अच्छी बात है बेटा! तब तो मैं समझूंगी कि मेरा काम खत्म हो गया और ठाकुर जी अपना भार किसी दूसरे को देना चाहते हैं। भगवान करें, ऐसा ही हो। मेरा आशीर्वाद लेकर तुम निडर चले जाओ बेटा! अपने ठाकुर जी के साथ मैं मजे में रह सकूंगी।'

माँ ने दृढ़ कंठस्वर से वृन्दावन की कहीं भाग जाने की प्रवृत्ति जाती रही। थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने भी दृढ़तापूर्वक कहा—'अगर, तुम्हारे ठाकुर जी हैं तो मेरी भी माँ है। अपने लिए मुझे जरा भी डर नहीं है केवल चरण के मुंह की ओर देखता हूं तो यहाँ रहने को जी नहीं चाहता। परन्तु जब किसी तरह यहाँ से जाना हो नहीं सकता तो चरण को ठाकुर जी के चरणों में सौंप कर मैं भी निश्चिन्त और निर्भय हो जाता हूं। आज से फिर कभी तुम मेरा मुंह सूखा हुआ नहीं देखोगी।'

तारिणी का लड़का मर गया। कहीं बाहर जाते हुए वृन्दावन ने दूसरे दिन देखा कि उनके तालाब में कोई औरत कपड़े धो रही है। कुछ कपड़े धोये जा चुके हैं और कुछ बाकी हैं। कपड़ों को देखकर वृन्दावन काँप गये। पास जाकर क्रुद्ध होकर कहा—'मुर्दे कपड़े आप यहाँ क्यों धो रही हैं?'

घूंघट के अन्दर से उस औरत ने कुछ कहा, किन्तु, वृन्दावन कुछ भी नहीं समझ सके।

वृन्दावन ने कहा—जो अनर्थ कर चुकी हो उसका तो कोई उपाय नहीं है किन्तु अब और कपड़े यहाँ साफ मत करो, चली जाओ।'

वह औरत सब कपड़े उठाकर वहाँ से चली गई।

वृन्दावन स्तब्ध होकर थोड़ी देर तक पानी की ओर देखते रहे। चलने लगे तो तारिणी को जल्दी २ अपनी ओर आते हुये देखा। एक तो वह पुत्र-शोक से दुखित था दूसरे उसका यह अपमान हुआ। आते ही उसने पागलों की तरह चेहरा विकृति कर कहा—'तुमने मेरी घर वाली को तालाब में नहाने नहीं दिया?'

वृन्दावन ने कहा—'नहीं, ऐसी बात नहीं। मैंने गंदे कपड़े धोना मना किया।'

तारिणी ने चिल्लाकर कहा—'तो उन्हें धोने कहाँ जाँय? रहेंगे बाड़ल में और कपड़ा धोने जायेंगे वैद्यवाटी में? तुम्हारा नाश हो जायगा। वृन्दावन नाश! नीच होकर पैसे के जोर से अगर ब्रह्मा को कृष्ट पहुँचाओगे तो तुम वंशहीन हो जाओगे।'

वृन्दावन की छाती दहल गई, किन्तु बेकार झगड़ा-फसाद करने की उनकी आदत नहीं है। अपने आप को सम्भाल कर शान्त-भाव से उन्होंने कहा—'अगर, अकेले मेरा नाश हो जाय तो कोई बात नहीं परन्तु आप तो मौहल्ले भर का नाश करना चाहते हैं। सारा गाँव बर्बाद हुआ जा रहा है, बस यही मौहल्ला बचा है, आप इसे भी बचा नहीं रहने देना चाहते?'

ब्राह्मण ने उद्धत स्वर से कहा—'भइया, हमेशा से लोग इस तालाब से कपड़े न साफ कर क्या तुम्हारे सिर पर साफ करते आये हैं?'

वृन्दावन ने दृढ़ता से जवाब दिया—'तालाब मेरा है, अगर आप नहीं मनोगे तो आपके घर के किसी आदमी को मैं पास नहीं फटकने दूंगा।'

तारिणी ने कहा—'फटकने नहीं दोगे तो बताओ हम कहां जायेंगे ?'

वृन्दावन ने कहा—'केवल पीने और व्यवहार करने के लिये ही यहाँ से पानी ले जा सकेंगे। अगर कपड़ा धोना हो तो गाँव के बाहर वाले गड्ढे में जाकर धोना होगा।'

तारिणी ने मुँह बनाकर कहा—'छोटे मुंह बड़ी बात ! कहता है कि औरतें गाँव के बाहर जाकर कपड़ा धोवें ? अरे, केवल मेरे ही घर विपत्ति नहीं आई है, तेरे घर भी आयेगी।'

वृन्दावन ने उसी तरह शान्त और दृढ़ भाव से जवाब दिया–'औरतों को गाँव के बाहर जाने को मैं नहीं कहता। आप के घर में अगर कोई नौकर या दासी नहीं है तो आप तो मर्द हैं, आप ही जाकर धो लावें। आप इस समय दुखित हैं, आपसे मैं कोई बड़ी बात कहना नहीं चाहता। परन्तु आप चाहे लाखों शाप क्यों न दे डालें किन्तु मैं इस तालाब का पानी आपको खराब नहीं करने दूंगा।'

यह कह कर वृन्दावन बिना कोई तर्क-वितर्क किये ही अपने घर चले आये।

कोई दसेक मिनट बाद घोषाल महाशय आकर दरवाजे पर आवाज देने लगे। वे तारिणी के सम्बन्धी थे, वृन्दावन के बाहर आते ही कहा—'भाई, वृन्दावन, सभी तो तुम्हें अच्छा समझते हैं फिर तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है ! ब्राह्मण पुत्र-शोक से मर रहा है और तुमने उसे तालाब पर जाने से मना कर दिया ?'

वृन्दावन ने कहा—पानी ले जाने के लिए मना नहीं किया है, केवल गंदे कपड़े धोने से रोका है।'

घोषाल महाशय ने कहा—यह अच्छा नहीं किया भइया, मैं कहे देता हूं। अब वह तुम्हारी बात रख लेगा और घाट पर न धोकर कुछ हटकर धो लेगा।'

वृन्दावन ने जवाब दिया—'गाँव भर को केवल इसी तालाब

का सहारा है। ऐसी बुरी हालत में किसी तरह भी मैं इसका पानी खराब नहीं होने दूंगा।'

विज्ञ घोषाल महाशय ने नाराज़ होकर कहा—'तुम्हारी यह जिद ठीक नहीं है वृन्दावन! जिस तालाव की शास्त्रानुसार प्रतिष्ठा की गई है उसका पानी कभी अशुद्ध और गदला नहीं हो सकता। चार अक्षर अंग्रेजी पढ़कर तुम शास्त्रों पर विश्वास नहीं करते, भला यह कैसे हो सकता है ?

एक ही बात बार २ कहते २ वृन्दावन थक गये थे। उन्होंने चिढ़कर कहा—'मैं जो कह चुका हूं, वही होगा। गन्दे कपड़े मैं तालाव पर नहीं धोने दे सकता। कोई दूसरा होता तो मुर्दे का सारा कपड़ा जला डालता किन्तु आप लोग उसका मोह नहीं छोड़ सकते तो उन्हें वाहर मैदान वाले गड्ढे में साफ कर लाइये। हमारे तालाब में यह सब नहीं चलेगा।'

यह कह कर वृन्दावन अन्दर चले गये। और शास्त्र-ज्ञानी घोषाल महाशय भी वृन्दावन के सर्वनाश की कामना करते हुए घर चले गये।

किन्तु, वृन्दावन को यह अच्छी तरह मालूम था कि यह मामला यहीं खत्म नहीं होने का। इसलिए तालाव पर उन्होंने एक पहरेदार नियुक्त कर दिया। दिन भर पहरा देने के वाद रात को नौ वजे आकर उसने वतलाया कि तालाव पर कपड़े धोये जा रहे हैं और तारिणी किसी तरह मानता ही नहीं। वृन्दावन ने तुरन्त जाकर देखा कि तारिणी की विधवा लड़की तकिये के खोल, बिस्तरे की चादर और छोटे वड़े कई कपड़े वहाँ पर धो रही है और तारिणी स्वयं वहाँ खड़ा है।

———

१२

दूसरे दिन वृन्दावन ने अपनी माँ के कहने के मुताबिक चरण को पास बुलाकर पूछा—'क्यों वेटा, अपनी माँ के पास जाओगे ?'

चरण मारे खुशी के नाचने लगा। कहा–'हाँ बाबूजी जाऊंगा।'

वृन्दावन ने मन ही मन एक ठेस महसूस की, बोले—'मगर, तुम्हें वहाँ वहुत दिनों तक रहना पड़ेगा। हमें छोड़कर रह सकोगे ?'

चरण ने तुरन्त सिर हिलाकर जवाव दिया–'हाँ रह सकूंगा।'

दरअसल आजकल के कठिन नियमों के कारण और उस पर कड़ी नजर रखने के कारण इस लड़के की नन्हीं-सी जान तङ्ग आ गई थी। वाहर वह खेलने-कूदने नहीं जा सकता था और पाठशाला वन्द होने के कारण संगी-साथियों से भी नहीं मिल सकता था। करीव २ दिन भर उसे घर में वन्द रहना पड़ता था। चारों ओर एक तरह की आशंका छाई हुई थी। यद्यपि कोई वात वह ठीक २ नहीं समझता था फिर भी मन ही मन बहुत घबरा रहा था। परन्तु, उधर माँ का अगाध स्नेह, स्वच्छन्दता से नहाना-खाना और खेल-कूद किसी तरह की भी मनाही नहीं है। हजार दोष हो जाने पर भी माँ स्नेह से केवल थोड़ा उलाहना दे देती हैं। कोई आँख नहीं दिखाता। तुरन्त घर से वाहर निकलने के लिये वह छटपटाने लगा।

वृन्दा ने कहा—'अच्छा जाओ।' और खुद टिन के एक छोटे से वक्से में पहनने के कुछ कपड़े और रुपये रखकर गाड़ी में रख दिया। उनकी आँखें छलछला आईं। लड़के का मुंह चूमकर उसे

उसकी माँ के यहाँ भेजकर उस दु:ख के समय में उन्होंने अपने आपको काफी निश्चिन्त पाया, साथ जाने वाले नौकर से लड़के पर कड़ी नजर रखने को कह दिया और रोज नहीं तो कम से कम दूसरे दिन आकर समाचार दे जाने के लिये कह दिया। वृन्दावन ने मन ही मन कहा—'भले ही इस लड़के को फिर न देख सकूँगा किन्तु इस आफत में तो उसे यहाँ रख नहीं सकता।'

जब तक गाड़ी दिखलाई देती रही, वृन्दावन टकटकी बाँधे देखते रह गये। फिर घर आकर कुछ देर तक इधर उधर करने के बाद अचानक उन्हें उस दिन की बात याद आ गई। उन्हें डर हुआ कि कहीं कुसुम नाराज न हो। फिर सोचने लगे–'यह ठीक नहीं किया उस हठी और क्रोधी का क्या ठिकाना? मेरे साथ न जाने से कुछ उल्टा-सीधा समझकर कहीं वह चिढ़ न जाये!' कन्धे पर झटपट एक चादर रखकर वे जल्दी-जल्दी चलकर पास पहुँचकर गाड़ी पर अपने बेटे के साथ बैठ गये।

बाहर से ही कुञ्जनाथ के घर की हालत देखकर वृन्दावन को आश्चर्य हुआ। चारों ओर ढेर-सा कूड़ा-करकट पड़ा था जैसे बहुत दिनों से वहाँ कोई रहता ही न हो। दरवाजा खुला था। लड़के के साथ अन्दर जाकर भी वही हाल देखा।

आहट पाकर कुसुम 'दादा' कहती हुई बाहर निकल आई। किन्तु इन लोगों को देखकर डाह और अभिमान से वह जल उठी और तुरन्त ही अन्दर चली गई। हमेशा की तरह चरण खुशी से दौड़ता हुआ गया और माँ से लिपट गया। कुसुम ने उसे गोद में ले लिया और पाँचेक मिनट बाद माथे का आँचल सम्भालकर चौखट के पास आ खड़ी हुई।

वृन्दावन ने पूछा—'कुञ्ज दा कहाँ हैं?'

'पता नहीं, घूमने गये हैं।'

वृन्दावन ने कहा—'लगता है, जैसे इस मकान में कोई रहता ही नहीं, तुम लोग यहाँ नहीं थे क्या ?'

'नहीं।'

'कहाँ थे ?'

कोई महीने भर हुए कुसुम अपने भाई की सास के साथ पश्चिम की ओर तीर्थ-यात्रा करने गई थी। कल ही शाम को वह लौटी थी। किन्तु, यह सब न कह कर उसने अवज्ञा से जवाब दिया—'यहाँ वहाँ कई जगह थीं।'

इसके पहले जब भी वृन्दावन आते, कुसुम बैठने के लिये आसन बिछा देती किन्तु, आज वह नहीं किया। यह देखकर वृन्दावन ने खुद ही कहा—'मैं खड़ा हूं, बैठने के लिये जगह तो दो।'

कुसुम ने उसी तरह अवज्ञापूर्वक कहा—'पता नहीं, आसन आदि कहाँ पड़ा है।' और यह कह वह खड़ी की खड़ी ही रही। एक कदम भी नहीं हिली। वृन्दावन तैयार होकर ही आये थे फिर इतनी अवज्ञा से उनके दिल पर काफी चोट पहुंची। परन्तु [illegible] होकर उस दिन का झगड़ा कर देना उन्हें अच्छी तरह [illegible] इस-लिये थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने [illegible] कहा—'मैं तुम्हें ज्यादा तकलीफ नहीं दूंगा। [illegible] बतलाये देता हूं। हमारे गाँव में बीमारी फैल रही है इसलिये [illegible] को तुम्हारे पास छोड़ जाऊंगा।'

बहुत दिनों से यहाँ नहीं रहने के [illegible] कुसुम [illegible] ठीक मतलब नहीं समझ सकी। उसने [illegible] वृन्दावन से कहा—'अच्छा तो, दया करके लाये हो ? किन्तु [illegible] और किस हिम्मत से दूसरे लड़के को [illegible] ?'

वृन्दावन ने शान्त भाव से कहा—[illegible] उसी हिम्मत से। इसके [illegible] अधिक तुम्हें ही चाहता है।

कुसुम कुछ कहना ही चाहती थी कि चरण ने उसका मुँह अपनी ओर फेरकर कहा—'माँ, बाबू जी कहते हैं कि मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। नहाने चलोगी न ?'

जवाब में कुसुम ने वृन्दावन को ताना मारते हुए कहा—'नहीं, मेरे साथ रहने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी नयी माँ आयें तो उन्हीं के साथ रहना।'

वृन्दावन ने अत्यन्त उदास हँसी हंसकर कहा—'यह खबर भी सुन चुकी हो ? अच्छा, मैं बतलाये देता हूं। माँ अकेले गृहस्थी नहीं सम्भाल पातीं, इसी से यह बात एक बार उठी थी किन्तु, उसी वक्त रुक भी गई।'

'क्यों, रुक गई ?'

'उसकी एक खास वजह है। किन्तु, मतलब ही क्या है उन बातों से ? चलो बेटा, चरण, हम चलें, देर हो रही है।'

चरण ने सिफारिश करते हुए कहा—'बाबूजी कल जाऊंगा।'

वृन्दावन चुप हो रहे। बिना कुछ कहे कुसुम ने चुपचाप चरण को गोद से उतार दिया। दो मिनट बाद अत्यन्त गम्भीर स्वर से पुकार कर वृन्दावन ने कहा—'अधिक देर मत करो बेटा, चलो।'

यह कह कर वे धीरे-से चल पड़े।

चरण बहुत लाड़ला था फिर भी, आज्ञा पालन करना उसने सीखा था। पहले चाह भरी आँखों से उसने अपनी माँ की ओर देखा फिर क्षुब्ध होकर चुपचाप पिता के पीछे२ चलकर बाहर निकल आया।

गाड़ीवान बैलों को पानी पिलाने चला गया था। बाप-बेटे उसका इन्तजार करते हुए बाहर खड़े रहे। कुसुम सदर दरवाजे की ओट में आकर खड़ी हो गई और अपने स्वामी का चेहरा देखकर चौंक गई। आँखें धंस गई थीं, चेहरा पीला पड़ गया था। वह अपने आपको सम्भाल नहीं सकी और आड़ में से ही चिल्लाकर बोली—'जरा सुनते तो जाओ।'

वृन्दावन ने पास आकर कहा—'क्या है ?'

'इधर क्या तुम बीमार थे ?'

'नहीं।'

'तो रोगी-से क्यों हो गये हो ?'

'कुछ कह नहीं सकता। शायद, बहुत सोच-फिक्र के कारण दुर्बल हो गया हूं!'

सोच-फिक्र! पति का पीला चेहरा देखकर उसका क्रोध कम हो गया था परन्तु, आखिरी बात सुनकर वह फिर जल उठी। बोली—'तुम्हें तो सोलह आने सुख है। सोच-फिक्र किस बात की हैं, जरा मैं भी सुनूं ?'

वृन्दावन ने कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी तैयार हो गई। चरण उस पर चढ़ने लगा तो वृन्दावन ने कहा—'क्यों रे, अपनी माँ को प्रणाम नहीं किया ?'

चरण गाड़ी पर से उतर आया और दरवाजे के बाहर जमीन पर माथा टेककर माँ को प्रणाम किया। कुसुम ने घबरा कर जब उसे पकड़ना चाहा तो वह भाग गया। सब कुछ न जानने पर भी इतना अवश्य समझ गया कि माँ ने मेरा आदर आज नहीं किया। रहने के लिये आया था और रक्खा नहीं।

वृन्दावन ने कुछ और नजदीक आकर भारी गले से कहा—'पता नहीं फिर कभी कह सकूँ या नहीं इसलिए आज कहे देता हूं। आज तो गुस्से में तुमने चरण को नहीं रक्खा किन्तु, अगर किसी दिन मैं न रहूं, तो अवश्य रखना।'

कुसुम ने घबरा कर कहा—'मैं यह सब सुनना नहीं चाहती।'

'तो भी सुन लो। इसे तुम्हें सौंपने के लिए ही मैं आज आया था।'

"मुझ पर विश्वास ही क्या है ?"

वृन्दावन की आँखें छलछला गईं। बोले—'[illegible]

कुसुम कुछ कहना ही चाहती थी कि चरण ने उसका मुँह अपनी ओर फेरकर कहा—'माँ, बाबू जी कहते हैं कि मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। नहाने चलोगी न ?'

जवाब में कुसुम ने वृन्दावन को ताना मारते हुए कहा—'नहीं, मेरे साथ रहने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी नयी माँ आयें तो उन्हीं के साथ रहना।'

वृन्दावन ने अत्यन्त उदास हँसी हँसकर कहा—'यह खबर भी सुन चुकी हो ? अच्छा, मैं बतलाये देता हूं। माँ अकेले गृहस्थी नहीं सम्भाल पातीं, इसी से यह बात एक बार उठी थी किन्तु, उसी वक्त रुक भी गई।'

'क्यों, रुक गई ?'

'उसकी एक खास वजह है। किन्तु, मतलब ही क्या है उन बातों से ? चलो बेटा, चरण, हम चलें, देर हो रही है।'

चरण ने सिफारिश करते हुए कहा—'बाबूजी कल जाऊंगा।'

वृन्दावन चुप हो रहे। बिना कुछ कहे कुसुम ने चुपचाप चरण को गोद से उतार दिया। दो मिनट बाद अत्यन्त गम्भीर स्वर से पुकार कर वृन्दावन ने कहा—'अधिक देर मत करो बेटा, चलो।'

यह कह कर वे धीरे-से चल पड़े।

चरण बहुत लाड़ला था फिर भी, आज्ञा पालन करना उसने सीखा था। पहले चाह भरी आँखों से उसने अपनी माँ की ओर देखा फिर क्षुब्ध होकर चुपचाप पिता के पीछे २ चलकर बाहर निकल आया।

गाड़ीवान बैलों को पानी पिलाने चला गया था। बाप-बेटे उसका इन्तजार करते हुए बाहर खड़े रहे। कुसुम सदर दरवाजे की ओट में आकर खड़ी हो गई और अपने स्वामी का चेहरा देखकर चौंक गई। आँखें धंस गई थीं, चेहरा पीला पड़ गया था। वह अपने आपको सम्भाल नहीं सकी और आड़ में से ही चिल्लाकर बोली—'जरा सुनते तो जाओ।'

वृन्दावन ने पास आकर कहा—'क्या है ?'

'इधर क्या तुम बीमार थे ?'

'नहीं।'

'तो रोगी-से क्यों हो गये हो ?'

'कुछ कह नहीं सकता। शायद, बहुत सोच-फिक्र के कारण दुर्बल हो गया हूं !'

सोच-फिक्र ! पति का पीला चेहरा देखकर उसका क्रोध कम हो गया था परन्तु, आखिरी बात सुनकर वह फिर जल उठी। बोली—'तुम्हें तो सोलह आने सुख है। सोच-फिक्र किस बात की हैं, जरा मैं भी सुनूँ ?'

वृन्दावन ने कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी तैयार हो गई। चरण उस पर चढ़ने लगा तो वृन्दावन ने कहा—'क्यों रे, अपनी माँ को प्रणाम नहीं किया ?'

चरण गाड़ी पर से उतर आया और दरवाजे के बाहर जमीन पर माथा टेककर माँ को प्रणाम किया। कुसुम ने घबरा कर जब उसे पकड़ना चाहा तो वह भाग गया। सब कुछ न जानने पर भी इतना अवश्य समझ गया कि माँ ने मेरा आदर आज नहीं किया। रहने के लिये आया था और रक्खा नहीं।

वृन्दावन ने कुछ और नजदीक आकर भारी गले से कहा—'पता नहीं फिर कभी कह सकूँ या नहीं इसलिए आज कहे देता हूं। आज तो गुस्से में तुमने चरण को नहीं रक्खा किन्तु, अगर किसी दिन मैं न रहूं, तो अवश्य रखना।'

कुसुम ने घबरा कर कहा—'मैं यह सब सुनना नहीं चाहती।'

'तो भी सुन लो। इसे तुम्हें सौंपने के लिए ही मैं आज आया था।'

"मुझ पर विश्वास ही क्या है ?"

वृन्दावन की आँखें छलछला गईं। बोले—'फिर, वही बात !

सुना है, कुसुम, तुमने बहुत कुछ सीखा है किन्तु स्त्रियों को सबसे बड़ी सीखने की जो बात है वह है क्षमा। तुमने क्षमा करना नहीं सीखा। परन्तु, मेरा विश्वास है कि तुम चरण की माँ हो। लड़के को सौंपने के लिये यदि माँ-बाप का विश्वास न किया जाय तो किसका किया जाय ?'

कुसुम इस बात का कोई जवाब नहीं दे सकी।

घर पहुँचने के लिये बैल उतावले हो रहे थे। चरण ने आवाज दी—'बाबू जी, आओ न !'

कुसुम कुछ चाहती थी किन्तु उसके पहले ही वृंदावन ने कहा—'अच्छा चलूँ'—और गाड़ी पर जा बैठे।

कुसुम बैठ गई। बड़े अभिमान से उसने अपनी स्वर्ग-वासिनी माँ को उद्देश्य कर कहा—'माँ होकर भी तुम मुझ से कितना बैर कर गईं। सचमुच अगर मेरे अनजाने तुम मुझ पर कलंक लगा गईं, सच-मुच अगर, अपने घृणित अभिमान के चरणों पर मेरी बलि चढ़ा गईं, तो वह मुझे स्पष्ट क्यों नहीं बता दिया ? मेरा हृदय जिसे अपने पति और पुत्र के रूप में पहचान गया है, उन्हें सारे संसार के सामने प्रमाणित करने का तिल मात्र भी स्थान तुम क्यों नहीं छोड़ गईं ? अगर, ऐसा हुआ तो कौन मेरा परित्याग कर पाता। कौन बेहया पति अपनी पत्नी को अनाथिनी की तरह अपने आश्रय में आने का उपदेश देने का साहस कर पाता ? और सचमुच ही अगर मैं विधवा हूं तो इसमें मुझे सन्देह क्यों होता ! वैसी हालत में किसकी हिम्मत थी कि विधवा के रूप के लालच में विधवा-विवाह का जिक्र करता !'

कुसुम उसी जगह, उसी तरह बैठे २ बड़ी देर तक रोती रही। फिर आकाश की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर बोली—'भगवन्, मेरे लिए कुछ न कुछ उपाय कर दो ! अभिमान से सिर उठाकर या तो मुझे पति के घर जाने दो या बचपन के वे दिन लौटा दो जिससे मैं निश्चिन्त होकर आराम की साँस ले सकूँ।'

———

१३

अपने भाई के मुँह से कुसुम ने जब उस दिन अपने पति के विवाह की बात सुनी तो उसे बड़ी फिक्र हुई और वह सोचने लगी कि भाग जाऊँ। तभी उसके भाई की सास तीर्थ यात्रा के लिए जाने लगी। कुसुम से कहा तो वह भी बिना कुछ कहे-सुने जाने के लिए राजी हो गई। कुञ्ज की सास कुसुम को दासी की तरह ले गई थी और उसके साथ उसी तरह पेश भी आई। किन्तु कुसुम में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह इतनी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दे। लौटकर नलडाँगे आने पर कुसुम ने जाने की बात कही तो उसने साँप की तरह फुँसकार कर कहा—'पागलों की तरह बातें मत करो। हम ठहरे बड़े आदमी और कदम-कदम पर हमारे दुश्मन पड़े हैं। जवान औरत, तुम अगर वहाँ अकेली पड़ी रहो तो समाज में हम कौनसा मुँह दिखलायेंगे ?' कुसुम ने इसका प्रतिवाद नहीं किया।

कुछ देर बाद कुञ्ज की सास ने फिर कहा—'अगर, तबियत हो तो अकेली तुम दादा के साथ चली जाओ और घर-बार देखकर साथ चली आना। अकेली तुम वहाँ किसी तरह भी नहीं रह सकतीं, मैं कहे देती हूं।'

इस बात पर कल शाम को कुसुम घर-बार देखने आई थी।

चरण वगैरह के चले जाने के कोई दो घण्टे बाद कुँजनाथ जमींदारों की तरह घूमते घर लौटे। नहा-खाकर सो गये और तीसरे

पहर अपनी वहिन को साथ लेकर ससुराल जाने की तैयारी करने लगे। दरवाजा वगैरह बन्द कर कुसुम चुपचाप गाड़ी पर जा वैठी। वह जानती थी कि दादा उन लोगों से नाराज हैं इसलिए सबेरे की कोई वात उनसे नहीं वतलाई।

कुञ्ज की पत्नी का नाम है व्रजेश्वरी। वह जितनी मुखरा है उतनी ही झगड़ालू भी। उसकी माँ को भी हार मानकर आँसू वहाना पड़ता है।

कुसुम को देखते ही पता नहीं क्यों, यही व्रजेश्वरी इससे प्रेम करने लग गई थी। उसकी माँ को यह अच्छा नहीं लगा और वह अपनी लड़की से नजर वचाकर उसे खरी-खोटी सुनाने लगी।

तीन चार दिन वाद सबेरे ही एक दिन कुसुम तालाव में कुछ वर्तन धोने के लिये ले जा रही थी। घर से वाहर आकर व्रजेश्वरी ने तेज आवाज में पूछा—'क्यों ननदजी, माँ ने तुम्हें कितने रुपये माहवार पर रक्खा है ?'

पास ही भण्डारे के सामने वैठी हुई माँ कुछ काम कर रही थी। लड़की का यह व्यङ्ग सुनकर वह चकित हो गई और क्रुद्ध होकर वोली—'कैसी वातें कर रही है री ? अपने आदमी से भी भला कोई तनख्वाह पर काम कराता है ?'

लड़की ने कहा—'वे मेरी हैं, तुम्हारी कौन होती हैं जो उस वेचारी से नौकरानी का काम ले रही हो और तनख्वाह भी नहीं दोगी।'

जवाव पर माँ जल्दी से गई और कुसुम के हाथ से सव वर्तन छीनकर खुद तालाव की ओर चल पड़ी।

कुसुम हतवुद्धि-सी रह गई। व्रजेश्वरी उसकी ओर देखकर मुस्कराई और यह कहते हुए अन्दर चली गई–'वहुत अच्छा, आने दो।'

इसके वाद दो-तीन दिनों तक कुसुम को लक्ष्य कर वह जली-कटी सुनाती रही। परन्तु, अचानक उसका व्यवहार वदल गया। व्रजेश्वरी को वहुत आश्चर्य हुआ।

तबियत ठीक न होने के कारण कुसुम ने कल रात को खाना नहीं खाया। नहा-खाकर खाना खा लेने के लिये आज सवेरे ही घर की मालकिन उससे बार-बार कहने लगी।

ब्रजेश्वरी से नजदीक जाकर धीरे से कहा—'मैं सोच रही हूं ननद जी कि माँ सहसा बदल कैसे गईं ?'

कुसुम ने कोई जवाब नहीं दिया किन्तु वह लड़की अपनी मां को अच्छी तरह से पहचानती थी। उसके इस व्यवहार-परिवर्तन के कारण का अन्दाज लगा कर वह मन ही मन चिढ़ गई। घर की मालकिन की बहिन का गोवर्धन नाम का एक लड़का है। बहुत अधिक ताड़ी और गाँजा पीने के कारण उसका चेहरा ऐसा हो गया है कि वह पहचान में नहीं आता कि उसकी उम्र पैंतीस साल की है या पैंसठ साल की। इसलिये अब तक उसकी शादी नहीं हुई। दूसरे मौहल्ले में उसका घर है। पहले तो शायद ही कभी वह आता हो परन्तु आज-कल किसी छिपी वजह से मौसी के प्रति उसकी श्रद्धा-भक्ति इतनी बढ़ गई है कि दिन-भर वह अन्दर बैठा २ उनसे बात-चीत करता रहता है और उनकी आज्ञाओं का पालन भी करने लगा है।

आज दोपहर को ब्रजेश्वरी कुसुम को लेकर तालाब में नहाने गई। पानी में उतरते ही सहसा उसकी नजर पास ही के कामादी की एक झाड़ी में गई। वहीं गोवर्धन एकटक उसकी ओर देख रहा था। उस वक्त तो वह कुछ नहीं बोली किन्तु घर लौटी तो देखा कि आंगन में खड़ा-खड़ा वह मौसी से बातें कर रहा है। जल्दी से घूंघट खींच कर कुसुम अन्दर चली गई। ब्रजेश्वरी ने पास जाकर पूछा—'क्यों गोवर्धन पहले तो तुम यहां कभी नहीं दिखलाई देते थे किन्तु आजकल तुम्हारी इतनी कृपा क्यों हो गई ? अब घर के अन्दर आना जाना जरा कम कर दो।'

गोवर्धन को नहीं मालूम था कि ब्रजेश्वरी ने उसे देख [illegible]

था किन्तु व्रजेश्वरी के सवाल से वह कुछ अप्रतिभ हो गया और
जवाब नहीं दे पाया।

किन्तु व्रजेश्वरी की माँ ने चिल्लाकर कहा—'तबियत
होती थी, इसलिये नहीं आता था, जब तबियत होने लगी,
लगा है।'

लड़की ने स्वाभाविक स्वर से ही कहा—'ऐसी तबियत
पसन्द नहीं। अपनी बात मैं नहीं कहती माँ, किन्तु मेरी ननद
तो यहाँ है? कम से कम पराई लड़की का खयाल तो उन्हें रख
ही चाहिये?'

माँ ने गला फाड़कर चिल्लाते हुए कहा—'पराई लड़की के
लिये मेरी बहिन का लड़का भी पराया हो जायगा कि मेरे घर नहीं
आवेगा। वह तो ऐसी निर्लज्ज है कि उसे देखकर मेरी जैसी बुढ़ियों
को भी लज्जा आने लगती है।'

माँ का संकेत समझकर व्रजेश्वरी चुप हो रही। उसे याद हो
आया कि उसने भी कुछ दिन पहले कुसुम के बारे में बहुत-सी ऐसी बातें
अपनी माँ से कही थीं किन्तु, तबकी बात कुछ और थी। अब वह सब
नहीं हैं तब उसे कुसुम से प्रेम नहीं था किन्तु अब वैसी बात नहीं है। और
जब भगवान की कृपा होती है तभी इस तरह का प्रेम भी होता है।

जाते हुए व्रजेश्वरी ने गोवर्द्धन की ओर तेज निगाह करके
कहा—'यह बड़ी शर्म की बात है दादा! अपनी जुबान से मैं कुछ
कह तो नहीं पाई किन्तु,सब कुछ देख लिया है। अगर तुम्हें आना
हो तो भाई की तरह आया करो नहीं तो तुम्हारी किस्मत में दुख
लिखा है और माँ भी तुम्हें उस दुख से नहीं बचा पायेंगी।'

यह कह कर वह अन्दर चली गई।

गोवर्द्धन का चेहरा स्याह हो गया। कहा—'मुझे कुछ नहीं
लूम मौसी, तुम्हारी कसम खाकर कहता हूं—कौन साला उस
ड़ी में—मैं तो दातून तोड़ने-चलो न हलवाई से पूछवा दूं-आये,

मेरे साथ वह इस मौहल्ले में, मैं पूछवा देता हूं—वकते-वकते गोवर्द्धन वहाँ से खिसक गया।'

कपड़ा वदलकर ब्रजेश्वरी जव कुसुम के कमरे में गई तो देखा कि अभी तक वह गीली धोती ही पहने है और जङ्गले के सहारे खड़ी हुई वाहर देख रही है। आहट पाकर उसने भर्राई आवाज में कहा—'भाभी तुम वेकार ही मेरे झंझट में पड़ गईं। तुम क्या मुझे यहाँ टिकने नहीं दोगी ?'

'पहले कपड़े वदलो तो वतलाती हूं।'

यह कह कर ब्रजेश्वरी ने जवर्दस्ती उसकी गीली धोती उतरवा कर सूखी धोती पहनवाई। इसके वाद उसने कहा—'मुझ से अन्याय नहीं सहा जाता ननद जी, चाहे वह तुम्हारे लिये हो या मेरे लिये। उसका मतलव मैं समझ गई हूं। उस कमवख़्त को अव मैं घर में नहीं घुसने दे सकती।

शर्म के मारे वह अपने माँ के मन की वात नहीं कह सकी।

कुसुम ने भर्राई आवाज में कहा—'मतलव किसी का कुछ भी क्यों न हो भाभी, परन्तु, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं कि वेकार झंझट खड़ा करके मुझे और आफत में मत डालो।'

'मेरे रहते आफत कैसे आ सकती है ?'

जोर से सिर हिलाकर कुसुम ने कहा—'मैं देख रही हूं कि आफत आवेगी और अवश्य आवेगी।—अपने हाथ से जोर से माथा ठोक कर कहने लगी—यह जली क़िस्मत जहाँ मुझे ले जायगी वहीं आफत आ जायगी। स्वयं भगवान भी मेरी रक्षा नहीं कर सकते। यह कह कर वह रो पड़ी।'

ब्रजेश्वरी सस्नेह उसके आँसू पोंछने लगी और थोड़ी देर तक चुप रहने के वाद धीरे से वोली—'शायद, तुम्हारा कहना विलकुल ठीक है। तुम वुरा मत मानना वहिन, किन्तु केवल क़िस्मत को दोष देने से ही काम कैसे चलेगा ? तुम्हारी गलती भी कुछ कम नहीं है।

कुसुम ने ब्रजेश्वरी की ओर देखते हुए कहा—'मैंने कौनसी गलती की ? मेरे बचपन की सब बातें तो तुम्हें मालूम होंगी ?'

'मालूम है किन्तु, वह तो आदि से अन्त तक बिल्कुल झूंठ है। तुम तो सयानी हो, सब कुछ जानती हो फिर भी न तो सिन्दूर लगाती हो, न चूड़ियाँ पहनती हो और न ससुराल ही जाती हो। यह भाग्य का दोष है या तुम्हारा ? उस समय तो तुम नहीं जानती थीं किन्तु अब तो जानती हो ! तुम्हीं बतलाओ तो कि ऐसी कौन-सी औरत है जो नाराज होकर विधवा का वेष बनाये रहती है ?'

'यह सब तो मुझे नहीं मालूम है भाभी, किन्तु तुम्हीं बतलाओ तो कि केवल सिन्दूर और चूड़ी पहन लेने से ही लोग मान जायेंगे ? लोग पूछेंगे कि पति कौन है ? इस बात का साक्षी कौन है ? और फिर, वे भी तो इस तरह मुझे अपने घर नहीं ले जायेंगे !'

वृजेश्वरी अवाक रह गई। बोली—'तुम कैसी बातें कर रही हो ननद जी ! इस बात का इससे बढ़कर सबूत और क्या हो सकता है ? क्या तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम कि इसी बात को लेकर नन्द काका के साथ इस घर में कितना गोलमाल होगया ?'

थोड़ी देर तक चुप रहकर ब्रजेश्वरी फिर कहने लगी—'तुम्हारे दादा तो सब कुछ जानते हैं, उन्होंने कुछ कहा नहीं ? मैं तो समझती थी कि तुम सभी बातें सुनकर ही यहाँ आई हो ! मैंने तो इसीलिए तुमसे कुछ नहीं कहा कि कहीं तुम्हें दुख पहुँचे और तुम नाराज न हो जाओ। बल्कि, जिस दिन तुम आई उस दिन तुम्हारे आने के कारण मुझे तुम पर गुस्सा भी आया था।'

कुसुम ने कुतूहल से अधीर होकर पूछा—'क्या बात है भाभी, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना !'

ब्रजेश्वरी ने ठण्डी साँस लेकर कहा—'वाह जैसे भाई वैसी ही बहिन ! ननदोई जी के साथ जब नन्द काका की लड़की की शादी तय हुई थी उस समय तुम तीर्थ यात्रा में गई थीं। तम्हारे दादा ने ही

उस समय इतना शोर गुल मचाया और आखिर में खुद ही चुप भी हो गये। हमारी सास की, तुम्हारी और उन लोगों की सभी बातें निकलीं तब नन्द काका ने इन्कार कर दिया कि कहीं फिर उनकी लड़की का सम्बन्ध न टूट जाय! इसके बाद मन्दिर के बड़े बाबाजी बुलवाये गये और उन्होंने यह फैसला दिया कि सब कुछ झूठ है क्योंकि एक तो बिना उन्हें सूचित किए समाज में यह सब काम हो ही नहीं सकता और दूसरे उन्होंने नन्द काका को यह हुक्म दिया कि जिसने यह सब काम किया उसका नाम बतलाओ। उसी समय उन्हें यह मानना पड़ा कि कण्ठी बदली नहीं गई थी, केवल बातचीत चली थी।'

कुसुम उत्सुकता से साँस रोककर कहने लगी—'नहीं बदली गई थी? मेरे मन में भी ऐसा ही होता था भाभी! लेकिन मेरे बारे में इतनी बातें उठीं कैसे?'

ब्रजेश्वरी ने हँसकर कहा—'तुम्हारे दादा को कभी २ बाई का झोंका जो आ जाता है! अगर कोई दूसरा होता तो लाज के मारे इतना गोलमाल मचाता ही नहीं किन्तु, इन्हें तो इसका कोई ध्यान ही नहीं! यही बात लेकर वे चारों ओर आन्दोलन करने लगे क्यों नन्द अपनी लड़की की शादी उनसे करेगा और मेरी बहिन ने कोई गलती की ही नहीं, उसकी कन्ठी बदली ही नहीं गई तो क्यों मेरे बहनोई उसे अपने घर नहीं ले जायंगे?'

कुसुम ने मारे लज्जा के कुण्ठित होकर कहा—'राम, राम'—तब क्या हुआ?

ब्रजेश्वरी ने कहा—'उसके बाद और कुछ नहीं हुआ। हमारी सास और नन्द काका की बहू, दोनों एक ही गाँव की लड़कियाँ थीं! क्रोध, दुख, लज्जा और अभिमान के कारण तुम्हें यहाँ ले आकर उनके लड़के के साथ बातचीत तय हुई किन्तु, कुछ हुआ नहीं। परन्तु ननदोई जी भी तो यह सब बातें अपने कान में सुन गये हैं ननदजी,

क्या उन्होंने भी इस बारे में कुछ नहीं कहा ? मैंने तो सुना था कि वे तुम्हें ....'

कुसुम ने मुँह फेरकर कहा—'मालूम होता है भाभी, कि उस दिन वे वही बातें कहने आये थे।'

व्रजेश्वरी ने विस्मित होकर पूछा—'किस दिन ? इस बीच क्या वे तुम्हारे यहाँ गये थे ?'

'हाँ, उसी दिन सवेरे, जिस दिन हम यहाँ आये थे।'

'फिर क्या हुआ ?'

'मेरे बुरे व्यवहार के कारण विना कुछ कहे-सुने ही चले गये।'

व्रजेश्वरी ने मुस्कराते हुए कहा—'क्या किया था तुमने ? अपने घर में घुसने ही नहीं दिया था, वातचीत ही नहीं की ?'

कुसुम ने कुछ जवाव नहीं दिया। एक लम्बी साँस खींचकर चुपचाप बैठी रही।

व्रजेश्वरी ने भी कुछ नहीं पूछा। शाम का अन्धकार घना होता जा रहा था। चारों ओर से शंखनाद सुनकर व चौंककर वह उठ खड़ी हुई और वोली—'जरा बैठो ननदजी, चिराग जलाकर मैं अभी आती हूं।'

यह कहकर व्रजेश्वरी वहाँ से चली गई।

लौटकर उसने देखा कि कुसुम जमीन पर औंधी पड़ी हुई सिसक-सिसक कर रो रही है। चिराग यथास्थान रखकर वह कुसुम के सिर पर हाथ रखकर चुपचाप बैठ गई। थोड़ी देर तक बैठी रहने के वाद धीरे से वोली—'सचमुच ही तुमने अच्छा काम नहीं किया, ननदजी ! यह तो मुझे नहीं मालूम कि तुमने क्या किया परन्तु जब वे तुम्हारे हैं और तुम उनकी तो विना उनसे पूछे तुम्हें कहीं जाना नहीं चाहिये।'

कुसुम सिर उठाकर चुपचाप सुनती रही।

व्रजेश्वरी ने कहा—'तुम्हारी ही बातें सुनकर मैं सोचती हूं कि

अगर तुम्हारी जगह पर मैं होती तो पैदल चलकर क्या, उनके कहने पर मैं रास्ते पर नाक रगड़ती हुई वहाँ तक जाती।'

कुसुम उसी तरह पड़ी रही और अस्फुट स्वर में बोली–'मुँह से तो यह कहा जा सकता है भाभी, किन्तु किया नहीं जा सकता।'

'कभी नहीं। जाने से पति-पुत्र मिलेंगे, खाना-कपड़ा मिलेगा। इतना मिलने पर स्त्री के लिये कौन सा काम मुशिकल हो सकता है? मुझे तो वह सब नहीं मिलता फिर भी, लौटकर नहीं आती। दुत-कारने पर भी नहीं आती। शरीर पर तो हाथ उठाते नहीं फिर, डर किस वात का? वहुत करते तो कहते कि जाओ और मैं कह देती कि तुम चले जाओ। अगर जवर्दस्ती रहने लगती तो वे मेरा क्या कर लेते?'

इतने दुख में भी कुसुम व्रजेश्वरी की वात सुनकर हंस पड़ी।

किन्तु, व्रजेश्वरी ने उस हंसी में योग नहीं दिया। वह अपने दिल की वातें कर रही थी—कसुम को हंसाने या सान्त्वना देने के लिए नहीं। वह और भी गंभीर होकर कहने लगी—'मैं विल्कुल ठीक कहती हूं ननद जी, तुम किसी की भी मत सुनो और चुपचाप उनके पास चली जाओ। ऐसी विपत्ति में पति-पुत्र को अकेले मत छोड़ो।'

व्रजेश्वरी की आवाज में यह आकस्मिक परिवर्तन सुनकर कुसुम झटपट उठ वैठी और पूछने लगी—'विपत्ति कैसी।'

व्रजेश्वरी ने कहा—'विपत्ति नहीं तो और क्या कहेंगे? भले ही वे मजे में हों किन्तु, वाड़ल में हैजे का जोर है। अभी २ तुम्हारे भाई कह रहे थे कि दिनों दिन रोग वढ़ता ही जा रहा है, और दस-वारह आदमी रोज ही मर रहे हैं।—हँ, हँ, यह क्या कर रही हो ननद जी, मेरे पाँव मत छुओ।'

कुसुम उनके दोनों पैरों को जोर से पकड़ कर रोने लगी—'उस दिन अपना चरण देने के लिए ही वे आये थे भाभी, किन्तु मैंने नहीं लिया। मैंने उनकी वात नहीं सुनी। भाभी ....'

व्रजेश्वरी ने रो कर कहा—'अच्छा, अब तो सुनो। जाकर लड़के को सम्भालो।'

'अब मैं कैसे जाऊँ ?'

व्रजेश्वरी कुछ कहना ही चाहती थी कि पीछे से किसी के पैरों की आवाज आई। मुंह खोलकर उसने देखा कि दरवाजा खोलकर माँ चौखट के पास खड़ी हैं। नजर मिलते ही माँ ने ताना मारा-'क्या सलाह दी जा रही है नन्द जी को ?'

व्रजेश्वरी ने स्वाभाविक स्वर में कहा—'अन्दर चली आओ माँ, डरो मत! अपने आदमी को कोई बुरी सलाह नहीं देता, मैं भी नहीं देती।'

माँ बड़ी देर तक भीतर ही भीतर जलती रहीं। चिल्लाकर बोलीं-'इसका मतलब तो यही हुआ कि मैं लोगों को बुरी सलाह देती हूं ? जब यह कलमुंही घर में आई तभी मैं समझ गई कि इस घर को भी मिट्टी में मिला देगी। इसके इस स्वभाव से ही कुञ्ज इसे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहता।'

बेटी भी माँ को कुछ ऐसा ही कड़ा जवाब देना चाहती थी किन्तु, कुसुम ने धीरे से चिकोटी काटी और वह रुक गई। कहा—'इसीलिये तो मैं कलमुंही से कह रही थी कि यहाँ मत रह, ससुराल चली जा!'

ससराल का नाम सुनते ही माँ ने पान में सने होठ और तिलक लगाई हुई नाक सिकोड़कर कहा—'किस ससुराल में भेज रही हो, जरा सुनूं ? नन्द वैष्णव के ?'

अबकी व्रजेश्वरी ने धमकाते हुए कहा—'सब कुछ जानकर भी अनजान बनकर बेकार ही इसका अपमान मत करो। लड़कियों के दस-बीस ससुराल नहीं हुआ करतीं कि आज नन्द वैष्णव का नाम लिया जायगा और कल गोवर्धन के बाप का।'

लड़की से यह कड़ा और स्पष्ट संकेत पाकर माँ बारूद की

कहा—'हो नहीं सकता। जब तक माँ न कहेंगी चरण को यहाँ ला नहीं सकता।'

ब्रजेश्वरी ने कहा—'जाकर कम से कम एक बार देख ही आओ कि वे लोग कैसे हैं।'

कुँजनाथ ने कहा—'बाप रे, वहाँ तो रोज ही पन्द्रह-बीस आदमी मर रहे हैं।'

'तो किसी और को भेज दो, जो जाकर समाचार ले आवे।'

'हाँ, यह हो सकता है।'

कुँजनाथ आदमी खोजने चले गये।

दूसरे दिन सवेरे कुसुम नहाकर रसोई घर में जा रही थी। उसे देखते ही आँगन बुहारती हुई दासी ने कहा—'माँ ने मना किया बहिन, आज रसोई घर में मत जाओ।'

दासी की बात सुनते ही कुसुम का कलेजा काँप गया। उसने डर कर पूछा—'क्यों?'

'यह मुझे नहीं मालूम।'

कह कर दासी अपने काम में लग गई।

कुसुम लौट कर बड़ी देर तक अपने कमरे में बैठी रही। और दिनों तो ब्रजेश्वरी कई बार वहाँ आया जाया करती थी किन्तु आज एक बार भी नजर नहीं आई। बाहर निकलकर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली।

वह अपनी माँ के कमरे में छिपकर बैठी थी। वह जानती थी कि कुसुम उस कमरे में नहीं जाती। रोज दोनों साथ ही भोजन किया करती थीं, जब भोजन का समय बीत चला तो मारे आशङ्का के कुसुम से रहा नहीं गया। एक बार फिर ब्रजेश्वरी को खोजने वह निकली। तभी माँ ने आकर कहा—'अब देर क्यों कर रही हो बेटी, जल्दी जाओ, एक डुबकी लगा आओ और खाना खा लो। तुम्हारे दादा सब पूछने के लिए ठाकुरबाड़ी गये हैं।'

कोई दसेक मिनट बाद कुँजनाथ आँगन में खड़े होकर औरतों की तरह जोर जोर से चिल्लाकर रोने लगे—'माँ' (सास) ने मेरी बहिन को मार डाला—अब मैं यहाँ नहीं रहूंगा—इस घर में पैर भी नहीं रक्खूंगा। हायरी कुसुम........'

कुञ्जनाथ की सास को भी मालूम नहीं था। चिल्लाहट सुनकर वे बाहर निकलीं और हतबुद्धि सी खड़ी रह गईं।

उसे देखते ही कुँजनाथ वहीं औंधा होकर सिर पीटने लगा—'इसी राक्षसी ने मेरी बहिन को खा डाला—हाय, मैं मर क्यों न गया। हाय, मेरा क्या हो गया!'

ब्रजेश्वरी ने नजदीक जाकर हाथ पकड़ कर खींचा किन्तु धक्का देकर उसने गिरा दिया—'चल हट, दूर हो जा, मुझे छूना मत!'

ब्रजेश्वरी उठ खड़ी हुई। अब की जबर्दस्ती उन्हें वह कमरे में खींच ले गई और कहा—'बस, रोने-चिल्लाने से तुम्हारी बहिन आ जायेंगी? मैं कहती हूं, वे डूबकर नहीं मरी हैं।'

कुँजनाथ को विश्वास नहीं हुआ। वे उसी तरह रोते रहे। बड़ी तकलीफ से उन्होंने इस बहिन को पाला-पोसा था और उसे बहुत चाहते थे। इसके पहले कुसुम ने कई बार डूब मरने की धमकी दी। अब उनकी आँखों में बहुत से आँसू आने लगे और अपनी बहिन का मृत शरीर जैसे उसी में तैरने लगा।

ब्रजेश्वरी ने स्नेहपूर्वक अपने पति की आँखों से आँसू पोंछते हुए कहा—'तुम चुप हो जाओ। मुझे विश्वास है कि वे मरी नहीं हैं।'

कुँजनाथ आँसू-भरी आँखें फाड़-फाड़ कर उसकी ओर देखते रहे।

उनकी पत्नी ने आँचल से एक बार फिर उनके आँसुओं को ठीक से पोंछते हुए कहा—'मुझे लगता है कि नन्द जी छिपकर चली गई हैं।'

कुँजनाथ ने सिर हिलाते हुए कहा—'ना, ना, ऐसा नहीं हो

सकता, वह वहाँ नहीं जायगी । चरण के अलावा वहाँ किसी को भी वह नहीं देख सकती ।'

व्रजेश्वरी ने कहा—'यही तो तुम्हारी भूल है । जैसे मैं तुम्हें चाहती हूं वैसे ही वे अपने पति को चाहती हैं । जो कुछ भी हो पर, केवल चरण के लिये भी तो वे वहाँ जा सकती हैं ।'

'परन्तु, वाड़ल का रास्ता तो वे जानती नहीं ।'

'मुझे इसी का डर है । अगर कहीं राह भूल गई तो पहुँचने में देर होगी या रास्ते में कोई आफत भी आ सकती है । नहीं तो सात समुद्र और तेरह नदियों के पार भी अगर वाड़ल हो तो एक न एक दिन वे वहाँ पहुँच ही जायेंगी । मेरी वात मानो और तुम भी उसी रास्ते चले जाओ । रास्ते में अगर कहीं मिल जाँय तो साथ ले जाकर उन्हें उनके पति के हाथ सौंप आना ।'

'अच्छा मैं जाता हूं ।' कहकर कुँज उठ खड़े हुए ।

उनका चमचमाता हुआ वह जूता, वढ़िया रेशमी दुपट्टा और शानदार चाल आज ससुराल में ही रह गई । कम्वख्त कुसुम के शोक में जमींदार कुँजनाथ वावू फेरी वाले कुँज वैष्णव की तरह नंगे वदन और नंगे पैर पागलों की तरह दौड़ते हुए चल पड़े ।

— — — —

१४

वृन्दावन की माँ को मरे आज छः दिन हो गये। मरने के बाद अगर अपने अच्छे कामों के जोर पर किसी को स्वर्ग मिला है तो निःसंदेह वृन्दावन की माँ को भी स्वर्ग में स्थान मिलेगा।

तारिणी के उस दिन के व्यवहार से और घोषाल महाशय के शास्त्रज्ञान और शाप से दुखित होकर वृन्दावन नें नये ढङ्ग का नल वाला एक कुँआ अपने गाँव में बनवाने का निश्चय किया था। वे एक ऐसा कुँआ बनवाना चाहते थे जिसका पानी कोई किसी तरह भी खराब न कर सके और पानी थोड़ी ही मेहनत से निकाला जा सके ताकि गाँव के सभी लोगों का काम चल सके और आफत के समय में हैजे का डर दूर हो सके। चाहे कितना भी रुपया खर्च क्यों न हो जाय किन्तु ऐसा कुँआ बनवाने का उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था। कलकत्ते की एक मशहूर कम्पनी को चिट्ठी लिखकर उसके आदमी को इसीलिये बुलवाया था। जिस दिन माँ की मृत्यु हुई उस दिन सुबह वे उसी आदमी से काम की कुछ बातें तय कर रहे थे। करीब दस बजे घबराई हुई दासी बाहर आकर बोली—'बाबूजी, इतना दिन चढ़ आया किन्तु माँ ने अभी तक दरवाजा नहीं खोला।'

वृन्दावन ने शंकित स्वर से पूछा—'माँ क्या अभी तक सो रही हैं?'

'हाँ अन्दर से दरवाजा बन्द है। बहुत पुकारा पर कुछ आहट नहीं मिली।'

दिया। किसी ने सुना तो नहीं किन्तु, सब के हृदय तक बात अवश्य पहुँच गई।

तुलसी के चबूतरे के पास कपड़ा बिछाकर उन्हें सुला दिया गया। थोड़ी देर तक वे तुलसी के गाँव की ओर देखती रहीं। इसके बाद उनकी थकी और उदास आँखें संसार की अन्तिम निद्रा से धीरे-धीरे बन्द हो गईं।

इसके बाद ये छः रात वृन्दावन इसीलिये बिता सके कि यह ईश्वर के हाथ में था। अगर वह उनके हाथ में होता तो कभी नहीं बीत सकते थे।

किन्तु, चरण न तो अब बातचीत ही करता है और न खेलता ही है। वृन्दावन ने उसे कई तरह की गाड़ियाँ, जहाज और पशु-पक्षी इत्यादि अनेक तरह के कीमती खिलौने खरीद दिये, जिसे लेकर वह दिन-रात व्यस्त रहता, किन्तु अब ये सभी चीजें घर के एक कोने में पड़ी रहती हैं और उन्हें वह छूता तक नहीं।

इस आफत के दिन इस बच्चे की ओर ध्यान देने का विचार किसी के दिमाग में नहीं आया। जिस समय उसकी दादी की लाश को कफन उढ़ाकर जोर-जोर से 'हरी बोल' कहते हुए लोग ले जा रहे थे, उस समय वह भी पास ही खड़ा आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था।

वह अक्सर सोचता कि मुझे भी दादी अपने साथ क्यों नहीं ले गईं और ऊपर से नीचे तक चादर में लिपटी हुई बैलगाड़ी के बदले आदमियों के कँधे पर चढ़ कर चुपचाप क्यों चली गईं और अब लौटकर आ क्यों नहीं रही हैं और बाबूजी इतना रो क्यों रहे हैं? उसकी इस हताश, विह्वल और नितान्त दुखित मूर्ति पर सब की नजर पड़ी किंतु उसके पिता की नजर नहीं पड़ सकी। माता की इस आकस्मिक मृत्यु से वृन्दावन को इतना सदमा पहुँचा था कि किसी बात की ओर ध्यान देने या कुछ सोचने समझने की उनमें

बिलकुल ही शक्ति नहीं रह गई थी। इनकी थकी और उदास आँखों के सामने कुछ टिक नहीं पाता था।

इधर कुछ दिनों से उसके अध्यापक दुर्गादास बाबू आ बैठे हैं और हर तरह से उन्हें समझाते हैं किन्तु वृन्दावन के दिल में कोई बात बैठती ही नहीं क्योंकि एक ही बात उनके दिमाग में बैठ गई है कि सहसा उनके जहाज का तला अनन्त समुद्र के बीच फँस गया है और किसी तरह भी यह टूटा हुआ जहाज किनारे तक नहीं पहुँच सकेगा। तब आखिर में जो समुद्र में डूबने ही वाला है, उसके मरने बचने से क्या फायदा? अगर, ऐसा न होता तो मेरी वही पत्नी, जिन्दगी की शुरुआत में ही मुझे छोड़कर चली नहीं जाती और ऐसे दुर्दिन में कुसुम को भी दया आ जाती, इस तरह निष्ठुर होकर वह छोड़ नहीं सकती। और सबसे बढ़कर ऐसी माँ जैसी शायद ही कभी किसी को मिलती हो, अपनी इच्छा से विदा हो गई और अन्तिम समय एक बात भी नहीं कह गईं। इस तरह जब उनके विपत्तिग्रस्त मस्तिष्क में इच्छा दिनोंदिन स्पष्ट दिखलाई देने लगी तब घर की पुरानी नौकरानी ने रोते २ शिकायत की—'बाबूजी, आखिर में क्या बच्चे को भी खो देना होगा? तुम तो कभी उसे अपने पास बुलाते ही नहीं। जरा उसकी हालत तो देखो, कैसा हो गया है।'

दासी की इस बात से वृन्दावन को गहरी ठेस पहुँची मानो उनकी तन्द्रा टूट गई। उन्होंने चौंककर पूछा—'क्यों? क्या हुआ है चरण को?'

दासी ने अप्रतिभ होकर कहा—'ईश्वर न करे कि उसे कुछ हो! आओ बेटा, यहाँ आओ। देखो बाबा बुला रहे हैं।'

आड़ में से चरण बहुत संकुचित भाव से धीरे २ सामने आया। वृन्दावन ने उसे झपटकर कलेजे से लगा लिया और रोकर पूछा—'क्यों, क्या तुम भी चले जाओगे, बेटा?'

दासी ने डपटकर कहा—'हैं, बाबू जी, क्या बक रहे हो?'

वृन्दावन लज्जित हो गये। आँखें पोंछकर बहुत दिनों बाद उन्होंने हँसने की कोशिश की।

दासी जब अपने काम से चली गई। तब बहुत धीरे से चरण ने कहा—'बाबूजी, मैं माँ के पास जाऊँगा।'

वृन्दावन को यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि वह दादी के पास नहीं जाना चाहता। बड़े प्यार से उन्होंने कहा—'बेटा, तुम्हारी माँ तो अब उस मकान में नहीं हैं।'

'कब आवेंगी?'

'यह तो नहीं जानता बेटा, परन्तु, आज ही आदमी भेजकर पता लगाता हूं।'

चरण बहुत प्रसन्न हुआ। वृन्दावन ने कुछ सोच विचार कर अपने गाँव की भयानक दशा का उल्लेख करते हुए केशव को यह लिख दिया कि आकर चरण को ले जाय।

दो दिन बाद ही माँ के श्राद्ध का दिन था। सवेरे वृन्दावन चण्डी मण्डप के काम में लगे हुये थे कि किसी ने अन्दर से आकर कहा—'चरण को कै-दस्त हो रही हैं। दौड़कर वे गए और देखा कि चरण निर्जीव-सा बिस्तर पर पड़ा है, उसके कै दस्त में हैजे की साफ झलक है।'

वृन्दावन की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उनके हाथ-पैर ऐंठ कर बेकाम हो गये। यह कहते हुए वहीं वे मुर्दे की तरह पड़ रहे—'जाकर जरा केशव को एक खबर कर दो।'

कोई घन्टे भर बाद गोपाल डाक्टर के बैठक-खाने में वृन्दावन ने उनके दोनों पैर पकड़कर बहुत ही घबराहट में कहा—'दया करके इस बच्चे को बचा लीजिये डाक्टर साहब, मैंने चाहे लाख गलती की हों परन्तु यह बच्चा बेकसूर है। बिलकुल बच्चा है। डाक्टर साहब, एक बार जरा चलकर देखिए। उसकी तकलीफ देखकर आपको भी दया आवेगी।'

गोपाल ने चेहरा विकृत करके कहा—'उस समय नहीं जानते थे तारिणी मुकर्जी इन्हीं गोपाल डाक्टर के मामा हैं? नीच होकर

व्यवहार वन्द कर देंगे। नहीं तो मैं तो डोक्टर हूं, मुझे इससे
रुपये लूंगा, दवा दूँगा, किन्तु यह तो हो नहीं सकता। तुम पर
करने जाऊं तो बाल-बच्चों की शादी कहाँ करूं ? अगर, कल
माँ मर जाय तो उसकी गति कैसे बनेगी ? तुम्हें लेकर तो मेरा
चलने का नहीं। अच्छा, एक काम। घोषाल महाशय के साथ मा
जी के पास जाओ। वे वुड्ढे हैं, उनका कहा सभी मानते हैं। उन
हाथ पाँव पर गिरो। वे अगर एक वार कह दें तो मैं चलने के लि
तैय्यार हूं। हाल ही में मैं विल्कुल नयी और अच्छी दवाइयाँ ले
आया हूं। तुरन्त ही लड़का अच्छा हो जायगा।'

वृन्दावन घवराई नजर से देखते रहे। गोपाल ने ढाढ़स देते हुए कहा—'नहीं, डरने की कोई वात नहीं। तुम देर मत करो जाओ। और देखो भइया रुपयों की वात वहाँ मत कहना। जाओ, जल्दी जाओ।'

वृन्दावन रोते हुए दौड़ पड़े और तारिणी के श्री चरणों पर जा गिरे। लात मारकर अपना पैर छुड़ाते हुए तारिणी ने पिशाचों की तरह हंसकर कहा—'बिना संध्या-वंदन किये मैं कभी पानी तक नहीं पीता। क्यों मेरा कहा हुआ या नहीं ? निर्वंश हुये या नहीं ?'

वृन्दावन का रोना सुनकर तारिणी की पत्नी दौड़ी हुई आई और स्वयं रो पड़ी—'छिः छिः ऐसा अधर्म मत करो। जो होना था वह हो गया। हाय, छोटा-सा नासमझ वच्चा, गोपाल से कह दो कि
जाकर दवा दे आवे।'

तारिणी ने चिल्लाकर कहा—'ठहर हरामजादी, मर्दों के
बीच में वोल रही है ?'

उसने सिटपिटाकर वृन्दावन से कहा—'जा वेटा, मैं आशीर्वाद
देती हूं, तुम्हारा लड़का अच्छा हो जायगा।' यह कहकर आँसू पोंछती
हुई वह अन्दर चली गई।

वृन्दावन पागलों की तरह गिड़गिड़ाते रहे और तारिणी का हाथ-पैर पकड़ते रहे। परन्तु 'नहीं, तो भी नहीं!'

इसी समय शास्त्रज्ञ घोपाल महाशय खड़ाऊँ पहने खट-खट करते हुए बगल के मकान में से आ पहुँचे। सभी बातें सुनकर खुश हुए और बोले—'शास्त्रों में लिखा है कि कुत्ते को अगर मौका दिया जाय तो वह सिर पर चढ़ जाता है। नीचे आदमियों पर अगर शासन न रक्खा जाय तो समाज ही नष्ट हो जाय। इसी तरह तो कलयुग में धर्म-कर्म और ब्राह्मण-सम्मान इत्यादि सब कुछ खत्म हो गया है। क्यों तारिणी, उस दिन तुम से कहा था न कि वृन्दावन बहुत बढ़ गया है। जब इसने मेरा कहा नहीं माना तो मैं समझ गया कि इस पर विधाता रुष्ट हैं, अब यह बच नहीं सकता। देखा तारिणी, देखते देखते इसे कैसा फल मिला?'

मन ही मन प्रसन्न होकर तारिणी ने कहा—'मैंने भी तो उस दिन तालाब के किनारे खड़े होकर हाथ उठाकर शाप दिया था कि निर्वंश हो जाओगे! बिना संध्या-वन्दन किये मैं पानी तक नहीं पीता, काका! चन्द्र-सूर्य अब भी निकलते हैं और ज्वार भाटा अब भी आता है।' यह कहकर तारिणी, अपने इकलौते बेटे के शोक से आहत उस अभागे पिता की असीम व्यथा का उसी तरह साभिमान तृप्त दृष्टि से उपभोग करने लगा जिस तरह कोई शिकारी तीर से आहत होकर जमीन पर गिरे हुए शिकार का छटपटाना देखकर अपने अचूक निशाने का मजा लेता है।

वृन्दावन उठ खड़े हुए। प्राण बचाने के लिये वे बहुत प्रार्थना कर चुके थे, बहुत गिड़गिड़ा चुके थे। अब उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। घोर अज्ञान और अन्यतम मूढ़ता के असह्य अत्याचार ने इनके पुत्र-वियोग की वेदना का भी अतिक्रमण करके उनके अभिमान को जगा दिया था। उस बेकार बकवास की मीमांसा सुने बिना ही वे वहाँ से चल दिये कि जो काम सारे गाँव की भलाई के लिये किया

गया था उसके लिये इन दो धर्म-निष्ट ब्राह्मणों में से किसके गायत्री और संध्या-वंदन से मैं निर्वंश होने जा रहा हूं। दस बजे तक बिलकुल निसद्विग्न और शान्त भाव से वे अपने बीमार लड़के की चारपाई के पास आ खड़े हुये।

आग सुलगाकर उस समय केशव चरण के हाथ-पैर सेक रहे थे और निदाघतप्त मरु-तृष्णा के साथ जी जान से लड़ रहे थे। वृन्दावन के मुंह से सभी बातें सुनकर उनके मुंह से निकला—'उफ !'

वे उठ खड़े हुए और कन्धे पर एक दुपट्टा रख कर बोले—'मैं कलकत्ते जा रहा हूं। डाक्टर मिल गया तो शाम तक वापस आ जाऊंगा और अगर नहीं मिला तो मेरा यह जाना आखिरी समझना। उफ ये ही ब्राह्मण एक दिन सारी पृथ्वी पर अभिमान के पात्र थे। उनकी याद आते ही कलेजा फट जाता है वृन्दावन ! अच्छा जाता हूं, अगर हो सके तो लड़के को किसी तरह बचाये रखना भाई !'

यह कह कर केशव जल्दी से बाहर हो गये।

केशव के चले जाने पर चरण पिता को देखकर जोर २ से रोने लगा,—बाबा, 'माँ के यहाँ जाऊंगा। स्वभाव से ही वह बहुत शान्त था। कभी किसी बात के लिए हठ नहीं करता था। किन्तु आज उसे बहलाना मुश्किल होगया, ज्यों २ दिन ढलने लगा, तकलीफ बढ़ती गई। प्यास के कारण और माँ के पास जाने के लिये चिल्ला-चिल्लाकर उसने सब को पागल कर दिया। तीसरे पहर उसका यह चिल्लाना रुक गया। अब हाथ-पैर ऐंठने लगे और जुबान बन्द होने लगी।

चैत का वह छोटा दिन ढल रहा था। डाक्टर को साथ लेकर केशव अन्दर आये। डाक्टर उनका साथी था और उन्हीं की उम्र का। चरण को देखते ही गम्भीर होकर वह बैठ गया। कुछ कहना ही चाहता था किन्तु वृन्दावन को देखकर चुप रह गया।

यह देखकर वृन्दावन ने बहुत ही शान्त भाव से कहा—'मैं ही

इनका पिता हूं किन्तु, संकोच करने की कोई जरूरत नहीं। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, कहिए। डाक्टर साहब, जो बाप अपने एक-मात्र बेटे को विना किसी दवाई के लेकर बैठा रह सकता है, वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है।'

पिता का यह धैर्य्य देखकर डाक्टर साहब मन ही मन कुछ डरे। डाक्टर होने पर भी आखिर वे थे मनुष्य ही। पिता के सामने वे कुछ भी नहीं कह सके। उन्होंने सिर झुका लिया।

मतलब समझकर वृन्दावन ने कहा—'केशव, तो मैं चला। बगल में ही ठाकुर जी वाली कोठरी है, जरूरत हो तो बुलवा लेना। और हां, एक बात और! खात्मा होने से पहले बुला लेना ताकि एक बार और उसे देख सकूं।'

यह कह कर वे बाहर निकल गये।

ठाकुर जी वाली कोठरी में जिस समय वृन्दावन घुसे, अन्धेरा हो रहा था। उन्होंने दाहिनी ओर देखा। यहीं बैठकर मां जप किया करती थीं। अचानक उन्हें उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन कुंजनाथ के निमन्त्रण से वे लोग गये थे और मां अपने हाथों का कड़ा पहनाकर कुसुम को आशीर्वाद देकर आई थीं और चरण को गोद में लेकर बैठी थीं और मारे आनन्द के ठाकुर जी की कोठरी में अपनी असीम कृतज्ञता का निवेदन करने के लिये वह चुपचाप कोठरी में घुसी थीं और आज वे क्या निवेदन करने के लिये आये हैं? वृन्दावन ने जमीन पर लोटकर कहा—'बगल की कोठरी में मेरा चरण मर रहा है। इसकी फरियाद करने के लिये मैं आया हूं भगवान्! पितृ स्नेह भी अगर तुम्हारा ही दिया हुआ है तो फिर बाप की आंखों के सामने बिना किसी दवा के इस तरह निष्ठुरता से उसकी इकलौती सन्तान की हत्या क्यों होने दी? पिता को ढाढ़स बंधाने का भी कुछ उपाय क्यों नहीं किया? फिर उन्हें वह पुरानी बात याद आ गई जिसे बहुत दिनों से बहुतेरे कहते आ रहे हैं—

'ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।' जो तुम पर विश्वास नहीं करते उनकी बात तो वे ही जानें किन्तु, मुझे तो विश्वास है कि तुम्हारी मर्जी के विना एक सूखी हुई पत्ती भी जमीन पर नहीं गिर सकती। जगदीश्वर, तुमसे यही प्रार्थना है कि मुझे समझा दो कि इसमें मेरी कौन सी भलाई है ? मेरे इस नन्हे से चरण की मृत्यु से संसार में किसका कौन सा उपकार हो जायगा ? जो वे जानते थे कि संसार की सभी बातें मनुष्य नहीं समझ सकता फिर भी वे यही सोचने लगे कि चरण क्यों पैदा हुआ और क्यों इतना बड़ा हुआ और क्यों उसे कुछ भी करने का मौका दिये विना ही इस तरह बुला लिया गया।

कुछ देर बाद रात की पूजा-आरती इत्यादि खत्म करने के लिये पुरोहित जी आये। उनके पैरों की आहट से वृन्दावन की तन्द्रा टूटी और वे उठ बैठे। उनका मस्तिष्क शान्त हो गया था। आकाश में तब तक प्रकाशोदय नहीं हुआ था फिर भी निर्मल और स्वच्छ नीलाकाश के नीचे अपने भविष्य जीवन के अस्पष्ट मार्ग की रेखा वे पहचान रहे थे।

आँगन में एक ओर दरवाजे की आड़ में एक औरत को देखकर वृन्दावन को आश्चर्य हुआ। इस वक्त अन्धेरे में यहाँ कौन बैठा है !

नजदीक जाकर वृन्दावन ने तुरन्त ही पहचान लिया कि कुसुम है। उनकी जुबान पर आ गया—'कुसुम, क्या मेरा सोलह आना सुख देखने आई हो ?'

अभी २ अपने बेटे की शिशु-आत्मा की मङ्गल कामना से अपना सारा दुख सुख और मान-अभिमान छोड़कर वे आये थे इसलिये प्रतिहिंसा की नीच भावना से अपने बेटे का अमङ्गल करना उन्होंने नहीं चाहा। दयनीय स्वर से बोले 'थोड़ा और पहले तुम आ गई होतीं तो चरण की बहुत बड़ी इच्छा पूरी हो गई होती ! दिन भर उसने

जितना ही कष्ट पाया है, तुम्हारे पास जाने के लिये उतना ही रोया है। ओह, कितना चाहता था वह तुम्हें! किन्तु, अब तो वह बेहोश है। आओ मेरे साथ।

चुपचाप कुसुम पति के पीछे २ चल पड़ी। दरवाजे पर पहुँचकर वृन्दावन ने चरण की आखिरी शैय्या की ओर इशारा करते हुए कहा—'वह देखो, चरण पड़ा हुआ है। जाओ, ले लो उसे!—केशव, यह चरण की माँ है।'

यह कह कर चुपचाप वे दूसरी ओर चले गये।

दूसरे दिन सवेरे तक किसी को भी कुसुम के पास जाकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। कुंजनाथ भी डर कर पीछे हट गये। आखिर वृन्दावन ने नजदीक जाकर धीरे से कहा—'इस मुर्दे को पकड़े रहने से अब क्या फायदा? दे दो, ले जाँय वे लोग!'

कुसुम ने सिर उठाकर कहा—'उन लोगों से कह दो आने के लिये, मैं खुद ही उठाये देती हूं।'

इसके बाद कुसुम ने जिस अविचलित दृढ़ता से चरण का मृत शरीर श्मशान भेज दिया उसे देखकर वृन्दावन भी डर गये।

————

वनमाली पण्डित जी के व्यवहार से बहुत लज्जित हुआ था
छूटते ही वह भाई के साथ जल्दी से गायब हो गया।

रास्ते में उसी जगह पण्डित जी घुटनों के बल बैठ गये औ
ऊपर की ओर देखते हुए, हाथ जोड़कर कहने लगे—'जगदीश्वर चरण
को तुमने छीन लिया। किन्तु, मेरी यह दृष्टि मत छीन लेना। ऐसा
करना कि हमेशा ही आज ही की तरह सभी बालकों के मुँह देखा
करूँ और मेरे हाथ उन्हें गले से लगाने के लिए हमेशा ही आगे बढ़
जाया करें। केशव, श्मशान में तुम जिन्हें गालियाँ बक रहे थे, शायद
वे सभी बदमाश नहीं हैं।'

केशव ने हाथ पकड़ कहा—'चलो, घर चलो।'

'चलो—' कह कर वृन्दावन उठ खड़े हुए और दो-एक कदम
आगे बढ़कर बोले—'भाई, मेरी वाचालता के लिये मुझे माफ कर
देना। मेरे मन पर एक बहुत बड़ा बोझ रक्खा हुआ था—केशव,
मुझे यह सजा क्यों मिल रही है। अपने जाने में मैंने कोई ब्रह्महत्या
या गोहत्या नहीं की थी, जिसके लिये भगवान मुझे इतनी बड़ी सजा
दे रहे थे। मेरा.........'

केशव बीच ही में उद्धत होकर गरज पड़े—'उस बूढ़े घोषाल
हरामजादे से पूछो तो कहेगा कि उसके जप-तप के प्रभाव से यह
हुआ और दूसरे पाजी से पूछो तो कहेगा कि पूर्वजन्म का फल है।
उफ् ऐसे हैं इस देश के ब्राह्मण!'

वृन्दावन ने अत्यन्त धीरे से कहा—'साँप के केंचुल को
लाठी मारने से कोई फायदा नहीं है, केशव! सड़ी हुई छाछ की
दुर्गन्धि का अपवाद दूध के माथे मढ़ना गलती है। देखना तो यह
चाहिए कि अज्ञान ब्राह्मणों को कहाँ खींच ले गया है।'

सभी बातों की याद करके केशव मन ही मन जल रहे थे।
उनकी जबान पर जो कुछ आया, कहते गये—'फिर, इतनी बड़ी
सजा क्यों?'

वृन्दावन ने कहा—यह सजा नहीं है, केशव ! मैं यही कहना चाहता था कि जब मुझे किसी पाप की याद ही नहीं आती तो मैं इसे 'पाप का फल' कह कर अपने आप को तुच्छ करना नहीं चाहता। मुझे तो याद ही नहीं आता कि मैंने इस जीवन में कोई पाप किया है। इस पूर्व जन्म के सिर व्यर्थ आरोप लगाना आत्मा का अपमान करना है। इसलिए यह न तो मेरे पाप का फल है और न अपराध की सजा। गुरु के घर मेरे रहने के गौरव का यह फल है। बिना दुःख के कोई भी बड़ी चीज नहीं मिलती है। वह पुत्र-शोक जैसे बड़े 'दुःख के अलावा और किसी तरह भी नहीं मिल सकती। अगर मैं दिखला सकता तो कलेजा चीरकर दिखला देता कि संसार के सभी बालकों को चरण अपनी जगह पर छोड़ गया है। तुम ब्राह्मण हो, मुझे यही आशीर्वाद दो कि आज जो कुछ मुझे मिला है, उसे गँवाकर मैं अपने हाथ से सब कुछ नष्ट न कर दूँ।'

वृन्दावन का गला रुँध गया। दोनों दोस्त आमने-सामने खड़े होकर फ़ूट-फूटकर रोने लगे।

वृन्दावन ने उस दिन महज एक ही कुँआ बनवाने का निश्चय किया था, परन्तु, अब लगता है जैसे एक कुँए से काम नहीं चलने का। गाँव के पूरब की ओर गरीबों की बस्ती है, इसलिये जब तक उस मोहल्ले में भी एक कुँआ नहीं बन जाता, तब तक न तो पानी की दिक्कत मिटेगी और न हैजे का भय ही जायेगा। इसलिये कम्पनी के साहब से मिलकर केशव ऐसी खबर ले आये कि अगर अधिक रुपया खर्च किया जाय तो एक ऐसा कुँआ बन सकता है, जिससे एक गाँव तो क्या, पाँच-सात गाँवों का काम चल सकता है और पानी के अभाव में खेतों की सिंचाई में उससे काफी मदद मिल सकती है।

वृन्दावन बड़ी खुशी से राजी हो गये। श्राद्ध के दिन अपनी देहेत्तर जायदाद को छोड़कर बाकी सारी जायदाद उन्होंने केशव को रजिस्ट्री करने के लिये दे दी और कहा—'ऐसा करो केशव कि आगे

चलकर चरण की तरह उनके भाई-बन्धुओं को विषाक्त-पानी के कारण मरना न पड़े। मेरी सब से बढ़कर जायदाद मेरी पाठशाला है। इसका भार जब तुमने ले लिया तो मुझे और किसी चीज की जरूरत रही नहीं। चाहता हूं कि लौटकर अगर, फिर कभी इधर आ सकूं तो इतना अवश्य देख सकूं कि मेरी पाठशाला का कम से कम एक विद्यार्थी यथार्थ मनुष्य बन सका है। उसी दिन मुझे चरण का दुःख भूलेगा।

इधर कई दिनों से दुर्गादास बाबू हमेशा ही हाजिर रहा करते थे। उन्हें बहुत दुःख हुआ। बोले—'वृन्दावन, समझ में नहीं आता, मैं तुम्हें कैसे सान्त्वना दूं। किन्तु, दुख चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, उसे बर्दाश्त करने में ही मनुष्यत्व है। ईश्वर यह कभी नहीं चाहता कि मनुष्य अक्षय होकर संसार को छोड़ दे।'

सिर उठाकर वृन्दावन ने नरम स्वर में कहा—'संसार छोड़ने का तो कोई संकल्प ही नहीं है मास्टर साहब। बल्कि वह तो बिल्कुल असम्भव है। लड़कों का मुंह देखे बिना तो मैं एक दिन भी जिंदा नहीं रह सकता। आप की कृपा से सभी मुझे 'पण्डित महाशय' कहते हैं। अपना यह सम्मान मैं कभी हाथ से जाने नहीं दूंगा। कहीं अन्यत्र जाकर फिर यही पेशा शुरू करूंगा।'

दुर्गादास बाबू ने कहा—'सब कुछ तो तुमने पानी का कष्ट हटाने में ही दान कर दिया, फिर तुम्हारा काम कैसे चलेगा ?'

वृन्दावन ने संकोच से दीवार पर टंगी भीख मांगने वाली झोली दिखाकर कहा—'मास्टर जी, वैष्णव के लड़के को मुट्ठीभर भिक्षा की कमी कहीं नहीं होती। मेरे बाकी दिन बड़े मजे से कट जायेंगे। इसके अलावा, यह जायदाद मेरे चरण की थी और उसी के संगी-साथियों को मैंने वह दान कर दी।'

वृद्ध ब्राह्मण होने पर भी दुर्गादास बाबू श्राद्ध के दिन अपनी देख-रेख में ही सारा काम करा रहे थे, इसलिये कुसुम का यथार्थ

परिचय उन्हें मिल गया था। उस समय उसी को याद करके कहा—'न भइया, यह अच्छा नहीं होगा। तुम्हारी बात कुछ और है, किन्तु बहू के लिये बड़ी लज्जा की बात होगी। यह हो नहीं सकता।'

वृन्दावन ने सिर झुकाकर कहा—'वह अपने भाई के पास रहेगी।'

दुर्गादास वृन्दावन को अपने लड़के की तरह मानते थे। उसकी विपत्ति और गृह-त्याग के इस निश्चय से अत्यन्त दुखित होकर बोले, 'जन्म-भूमि छोड़ने की क्या जरूरत है वृन्दावन? यहीं रहकर भी तो पहले की तरह सब काम हो सकता है।'

वृन्दावन की आँखें छलछला आईं। बोले-'भीख मांगकर निर्वाह करने के अलावा अब मेरे लिये कोई उपाय नहीं है। परन्तु, यहां मुझसे वैसा नहीं हो सकता। इसके अलावा इस घर में जहां भी मेरी निगाह पड़ती है, वहीं उसके छोटे २ हाथ पैर के निशान ही नजर आते हैं। क्षमा कीजियेगा मुझे, मास्टर जी, मैं आदमी हूं और इतने बोझ से आदमी का सिर दब जायगा।'

दुर्गादास दुखित होकर चुप रहे।

उस दिन की मर्मान्तक घटना का प्रभाव चरण की दवा करने के लिये कलकत्ते आये हुए डाक्टर पर भी बहुत अधिक पड़ा। उनका अन्त देखने की उत्सुकता और वृन्दावन के प्रति आकर्षित होकर ही वे उस दिन सवेरे बिना बुलाये ही कलकत्ते से आगये थे। सभी बातें अब तक वे चुपचाप सुनते रहे थे। वृन्दावन के इतने बड़े वैराग्य का कारण तो किसी तरह वे समझ सकते थे, किन्तु, यह बात उनकी समझ में नहीं आती थी कि केशव भविष्य की अपनी सारी उन्नति को तिलांजलि देकर इस तरह स्वेच्छा से इन छोटी पाठशाला का गुरु भार अपने ऊपर क्यों ले रहा है? चकित होकर उन्होंने अपने दोस्त से पूछा—'केशव, क्या तुम सचमुच ही अपने उज्ज्वल भविष्य को तिलांजलि देकर अपना सारा जीवन इस पाठशाला में ही गुजार दोगे?'

केशव ने थोड़े में कहा—'शिक्षा देना ही तो मेरा काम है।'

डाक्टर ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—'सो तो मैं जानता हूं किन्तु क्या कालेज की प्रोफेसरी और इस पाठशाला की पण्डिताई एक ही है ? जरा सुनूं तो कि इसमें तुम्हारी कौन-सी उन्नति होगी ?'

केशव ने अत्यन्त सहज भाव से कहा–'खूब उन्नति है। रुपया-पैसा कमाना और उन्नति करना–दोनों एक नहीं हैं, अविनाश बाबू!'

'मानता हूं कि एक नहीं। किन्तु ऐसे गाँव में रहना भी तो महा-पाप है। उफ, उसकी याद आते ही रोमाँच हो जाता है!'

वृन्दावन हंसने लगे। केशव के जवाब देने से पहले ही बोले–'क्यों डाक्टर साहब, केवल गाँव का ही दोष है, आप लोगों का नहीं ? मेरी हालत देखकर आप काँप गये हैं, किन्तु कितने पुरुष और कितनी स्त्रियों की हर साल यही हालत होती है, और किसकी नजर उन पर पड़ती है ? ऐसी निर्दयता से हमें छोड़कर अगर आप चले नहीं जाते तो हम लोग इस तरह निरुपाय होकर नहीं मरते! बुरा मत मानियेगा डाक्टर साहब, किन्तु जिससे आप को खाने के लिये अन्न और पहनने के लिये कपड़ा मिलता है, वे सब इसी गाँव के अभागे दरिद्र लोग हैं। इन्हीं को कुचलकर आप लोगों के ऊपर चढ़ने की सीढ़ी तैयार होती है। एम० ए० पास करके भी केशव स्वेच्छा-पूर्वक उस उन्नति से विमुख होकर खड़े हुए हैं।'

आनन्द और उत्साह के मारे सहसा वृन्दावन को आलिंगन करके केशव कहने लगे–'वृन्दावन, मनुष्य बनने का तुमने मुझे कितना बड़ा मौका दिया है! कृपा करके दस साल बाद एकबार यहाँ आकर देख जाना कि यहाँ लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की प्रतिष्ठा हो रही है या नहीं।'

श्रद्धा और विस्मय से दुर्गादास और अविनाश दोनों ही उन दोनों मित्रों का मुंह देखते रह गये।

केवल भिक्षा की झोली के सहारे कल वृन्दावन अपने गाँव से चले जायंगे और घूमते-फिरते कहीं अपना धर्म-क्षेत्र चुन लेंगे। कुछ

बेकार है, मैं जरूर ही चलूंगी। गलती करके मैं अपना पुत्र खो चुकी हूं, अब पति नहीं खोना चाहती।'

वृन्दावन ने कुछ सोचकर कहा—'मेरा चरण मुझे जो मंत्र सिखला गया है क्या तुम भी वह मंत्र सीख सकोगी ?'

कुसुम ने दृढ़ और शांत स्वर से कहा—'कर सकूंगी।'

'अच्छा तो चलो'–कह कर वृन्दावन ने अपनी राय दे दी। और केशव पर सभी भार छोड़कर उसी रात को अपनी [illegible] वे बाड़ल से चले गये।